भूमिका

ललितकलाओं में काव्य की श्रेष्ठता

ललितकलाओं में काव्य का स्थान सब से ऊँचा माना जाता है। क्यों? अगर ऐसा प्रश्न उठाएँ तो उपरोक्त सिद्धान्त के पोषक तीन मौलिक कारण ढूँढ़ने से मिलते हैं।

पहला—ललितकलाएँ जिस उद्देश्य के लिए अपना अस्तित्व स्थिर किये हुए हैं, उसी उद्देश्य को परिपूर्ण करने के लिए जितनी काव्य को सफलता मिलती है, उतनी अन्य कलाओं को नहीं।

दूसरा—ललितकलाओं की उत्तमता का एक-मात्र कारण यह है कि कलाओं के व्यक्तीकरण में जितना बाह्य वस्तु का उपयोग कम किया जाता है, ललितकला उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। काव्यकला में बाह्य वस्तु का उपयोग अन्य कलाओं की अपेक्षा बहुत थोड़ा किया जाता है। इसलिए काव्य का ऊँचे स्थान तक पहुँचना स्वाभाविक है।

तीसरा—काव्य बनाने वाला अपने मानसिक भावों को लेकर श्रोता के मानसिक भावों में जितना जल्दी घुल-मिल जाता है, उतना अन्य कलाकार नहीं। इन उपरोक्त कारणों की कसौटी बनाकर काव्यकला को

भूमिका

ललितकलाओं में काव्य की श्रेष्ठता

ललितकलाओं में काव्य का स्थान सब से ऊँचा माना जाता है। क्यों? अगर ऐसा प्रश्न उठाएँ तो उपरोक्त सिद्धान्त के पोषक तीन मौलिक कारण ढूँढ़ने से मिलते हैं।

पहला—ललितकलाएँ जिस उद्देश्य के लिए अपना अस्तित्व स्थिर किये हुए हैं, उसी उद्देश्य को परिपूर्ण करने के लिए जितनी काव्य को सफलता मिलती है, उतनी अन्य कलाओं को नहीं।

दूसरा—ललितकलाओं की उत्तमता का एक-मात्र कारण यह है कि कलाओं के व्यक्तीकरण में जितना बाह्य वस्तु का उपयोग कम किया जाता है, ललितकला उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। काव्यकला में बाह्य वस्तु का उपयोग अन्य कलाओं की अपेक्षा बहुत थोड़ा किया जाता है। इसलिए काव्य का ऊँचे स्थान तक पहुँचना स्वाभाविक है।

तीसरा—काव्य बनाने वाला अपने मानसिक भावों को लेकर श्रोता के मानसिक भावों में जितना जल्दी घुल-मिल जाता है, उतना अन्य कलाकार नहीं। इन उपरोक्त कारणों की कसौटी बनाकर काव्यकला को

प्रकाशक—
लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मेहरचन्द लक्ष्मणदास,
संस्कृत हिन्दी पुस्तकालय,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

मुद्रक—
लाला खज़ानचीराम जैन,
मैनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

भूमिका

ललितकलाओं में काव्य की श्रेष्ठता

ललितकलाओं में काव्य का स्थान सब से ऊँचा माना जाता है। क्यों? अगर ऐसा प्रश्न उठाएँ तो उपरोक्त सिद्धान्त के पोषक तीन मौलिक कारण ढूँढ़ने से मिलते हैं।

पहला—ललितकलाएँ जिस उद्देश्य के लिए अपना अस्तित्व स्थिर किये हुए हैं, उसी उद्देश्य को परिपूर्ण करने के लिए जितनी काव्य को सफलता मिलती है, उतनी अन्य कलाओं को नहीं।

दूसरा—ललितकलाओं की उत्तमता का एक-मात्र कारण यह है कि कलाओं के व्यक्तीकरण में जितना बाह्य वस्तु का उपयोग कम किया जाता है, ललितकला उतनी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। काव्यकला में बाह्य वस्तु का उपयोग अन्य कलाओं की अपेक्षा बहुत थोड़ा किया जाता है। इसलिए काव्य का ऊँचे स्थान तक पहुँचना स्वाभाविक है।

तीसरा—काव्य बनाने वाला अपने मानसिक भावों को लेकर श्रोता के मानसिक भावों में जितना जल्दी घुल-मिल जाता है, उतना अन्य कलाकार नहीं। इन उपरोक्त कारणों की कसौटी बनाकर काव्यकला को

जैन,
प्रेस,
हौर।

जब कस लेते हैं और उसे अपने रूप में खरा पाते हैं तो उसके स्वरूपज्ञता की जिज्ञासा उठती है कि काव्य क्या है ?

काव्य का लक्षण

काव्य क्या है ? इस प्रश्न को सुलझाने के लिए बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं । जैसे—

(क) 'रमणीय अर्थ को प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य होता है ।' मनुष्य जन्म से ही रमणीय वस्तु पर लट्टू होने वाला स्वभाव रखता है । रमणीय पदार्थ मनुष्य के अन्तःकरण में एक मीठी सी गुदगुदी पैदा करते हैं, जिसे कहते हैं 'आनन्द' । इस आनन्द को उत्पन्न करने में जो शब्द समर्थ हो सकता है, वह काव्य है ।

(ख) मनुष्य का बाहरी जगत् के साथ जो रागात्मक संबन्ध है, उसके स्पष्टीकरण को काव्य कहते हैं । प्रत्येक मनुष्य अपने उपयोग तथा संपर्क में आने वाली वस्तु से मोह रखता है । इस मोह में आकर मनुष्य कभी-कभी हर्ष, शोक, विषाद, घृणा, करुणा प्रभृति भावों का अनुभव करता है । मनुष्य का यह अनुभव जब शब्दों के रूप में प्रकट होगा, तब वह काव्य कहा जायगा ।

(ग) 'कविता आत्मा की भाषा है ।' मनुष्य एक मननशील प्राणी है । मनुष्य की आत्मा अन्य प्राणियों की अपेक्षा विशेष ज्ञान की अधिकारी है । मनुष्य का मनन जब आत्मिक ज्ञान, तर्क, विवेक तथा अनुभव से लिप्त होकर प्रकट होता है तो उसे काव्य कहते हैं ।

अनेक काव्य की परिभाषाएँ तथा व्याख्याएँ अध्ययन कर लेने पर तथा तत्सम्बन्धी विवेचन करने पर, सब परिभाषाओं का 'बीज' एक ही निकलता है कि 'आनन्दोत्पादक शब्द को काव्य कहते हैं' । शब्द तभी आनन्दोत्पादक बन सकेगा, जब वह रमणीयार्थप्रतिपादक होगा । रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द तभी अपने स्वरूप में सफल होगा, जब उसको

व्यक्त करने वाला बाहरी जगत् में रागात्मक संबंध रखने की शक्ति रखता होगा। मनुष्य बाहरी जगत् के साथ तभी संबंध स्थापित करेगा, जब उसकी आत्मा में ज्ञान, तर्क, विवेक और अनुभव शिखरस्पर्शी होंगे।

काव्य के ये लक्षण 'काव्य हृदय की अनुभूति है, काव्य पद्यमय निबंध है, काव्य एक संगीतमय विचार है, काव्य पृथिवी और स्वर्ग का विवाह-संस्कार है, काव्य मनुष्य में निर्बल बनने वाली दिव्य भावों की प्रगतियों को बल देता है—इत्यादि' काव्य के स्वरूप का परिचय-मात्र कराते हुए भी 'आनन्दोत्पादक शब्द काव्य है' हमारे सैद्धान्तिक लक्षण से बाहर नहीं जाते।

काव्यकार का परिचय

जिसने काव्य को जन्म दिया है, उसका नाम है 'कवि'। काव्य की परिभाषाओं को पढ़ लेने के बाद, कवि के परिचय के लिए ये शब्द बरबस लेखनी से निकलने लगते हैं कि 'संसार की रागात्मक वृत्तियों का भंडार और ज्ञान, तर्क, मीमांसा तथा अनुभवों का केन्द्र ही कवि है,' जिसके रागात्मक वृत्तियों से जन्म लेकर ज्ञानतर्कादि भावों से ओत-प्रोत 'शब्द' एक आनन्द-जनन की शक्ति रखते हैं एवं 'काव्य' पद के सच्चे अधिकारी बनते हैं।

कवि प्रकृति का उपासक है। उसकी आँख किसी भी पदार्थ को निराले ढंग से देखती है। उसका अनुभव कल्पनापूर्ण होता हुआ भी सचाई से खाली नहीं है। उसका संसार 'स्वान्तःसुखाय' होता हुआ भी दूसरों के लिए होता है। उसकी सत्ता है भी इसी लिए कि वह मानव-मात्र की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाता फिरे। उसका जन्म भी इसी लि हुआ है कि वह अपने भावों को व्यक्त करने के लिए गाता रहे। उस जीवन का चरम लक्ष्य ही यही है कि वह मानवमात्र के लिए रमणीक वस जुटाता फिरे। कवि अपनी सत्ता जन्म से लेकर आता है, वह अभ्य लभ्य नहीं है।

काव्य का स्वरूप

काव्य का स्वरूप निर्णय करते हुए हमें दो भाग करने पड़ते हैं—पहला शब्दार्थ, और दूसरा रस ।

काव्य का सर्व-प्रथम साधन शब्द है । शब्द ही काव्य का निवास-स्थान है । विद्वानों ने शब्द को काव्य का शरीर माना है । अर्थ, शब्द का एक चमत्कार है, जो केवल अनुभवगम्य है । शब्द और अर्थ परस्पर नित्यसंबंधी हैं । शब्द और अर्थ को शरीर मान लेने पर उसके बाह्य उपकरणों की पूर्ति शेष रह जाती है । वे उपकरण ये हैं—अलंकार, गुण, रीति और दोष ।

अलंकार—शरीर को सुंदर तथा मनोमोहक बनाने वाले साधन को अलंकार कहते हैं । जैसे—कड़ा, कुंडल, भुजबंद प्रभृति । काव्य के शब्दरूपी शरीर को भी भूषित करने के लिए उपमा, रूपक, अप्रस्तुतप्रशंसा, विरोध उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग प्रभृति अलंकारों का आविर्भाव हुआ है ।

गुण—शरीर में किसी न किसी प्रकार से कोई न कोई गुण अवश्य विद्यमान होता है । काव्य में माधुर्य, ओज प्रभृति गुणों की विद्यमानता है

रीति—शरीर की बनावट जैसे अपना महत्त्व रखती है, उसी प्रक काव्य के शरीररूपी शब्द की बनावट गौड़ी, पांचाली, विदर्भी प्रभृ रीतियों पर निर्भर है ।

दोष—शरीर में दोष होते हैं । कोई शरीर बेडौल होता है, कोई श किसी दूसरे प्रकार से दुष्ट होता है । इसी प्रकार शरीर के स्थानी शब्द श्रुतिकटुत्व प्रभृति दोषों से पूर्ण मिलते हैं ।

अब रहा काव्य का दूसरा भाग—रस । रस का काव्य में वह स है, जो शरीर में आत्मा का है । आत्मा है तो शरीर किसी संज्ञा-विशेष का अधिकारी है, नहीं तो उसे शव कहा जाता है । इसी प्रकार रस

होगा तो काव्य सच्चे शब्दों में काव्य पद का अधिकारी है, नहीं तो कभी शब्दमात्र कहा जायगा। रस एक आनन्द का नाम है, जिसका भाव ... ज्ञा कोई विरला ही प्राणी करता है। इसी आनन्दोत्पादक शब्द को का... दी जाती है।—

इन दो भागों के अतिरिक्त एक और भाग भी है, जो दोनों भागों को परस्पर सम्मिलित होने में विशेष सहायता प्रदान करता है। वह भाग है छंद। गति और यति से पूर्ण लयमय युक्त शब्दों की परिमिति को छंद कहते हैं। छंद एक संगीत है, जो शब्द को अपना प्रभाव उत्पन्न करने में विशेष मदद देता है। छन्द में तुले हुए कुछ शब्द संगठित हो जाते हैं, जो प्रकीर्ण शब्दों की अपेक्षा प्रभाव उत्पन्न करने में बहुत शीघ्र सफल होते हैं। क्यों नहीं? संगठन में जो शक्ति है, उतनी असंगठन में नहीं। छंद में एक गति है, जिससे शब्द सिंह-द्वार से निकलने वाले सैनिकों की तरह कूदते-फाँदते निराली चाल से चलते हैं। छंद काव्य की प्रौढ़ता का समर्थक है, आवश्यक अंग नहीं।

काव्य के भेद

काव्य सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त होता है—एक दृ... और दूसरा श्रव्य। दृश्य वह काव्य है, जो आँख से प्रत्यक्ष किया ... । कानों से प्रत्यक्ष होने वाले काव्य को श्रव्य काव्य कहते हैं। श्र... काव्य पुनः दो खंडों में विभक्त है—एक गद्य और दूसरा पद्य। छन्द-शून्य रचना को गद्य और छन्द-युक्त रचना को पद्य कहा जाता है। पद्य काव्य के पुनः दो भेद किये जाते हैं—एक प्रबन्ध काव्य और दूसरा मुक्तक काव्य। जिन अनेक पद्यों में किसी विशेष कथानक सूत्र की उपलब्धि होती हो, उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं तथा जो पद्य एक होता हुआ भी स्वतन्त्र तथा स्वतः पूर्ण होता है, उसे मुक्तक कहा जाता है। काव्य के भेदोपभेदों का मानचित्र इस प्रकार से बनेगा—

काव्य का स्वरूप

काव्य का स्वरूप निर्णय करते हुए हमें दो भाग करने पड़ते हैं—
पहला शब्दार्थ, और दूसरा रस।

काव्य का सर्व-प्रथम साधन शब्द है। शब्द ही काव्य का निवास-
स्थान है। विद्वानों ने शब्द को काव्य का शरीर माना है। अर्थ, शब्द का
एक चमत्कार है, जो केवल अनुभवगम्य है। शब्द और अर्थ परस्पर
नित्यसंबंधी हैं। शब्द और अर्थ को शरीर मान लेने पर उसके बाह्य
उपकरणों की पूर्ति शेष रह जाती है। वे उपकरण ये हैं—अलंकार, गुण,
रीति और दोष।

अलंकार—शरीर को सुंदर तथा मनोमोहक बनाने वाले साधन को
अलंकार कहते हैं। जैसे—कड़ा, कुंडल, भुजबंद प्रभृति। काव्य के शब्दरूपी
शरीर को भी भूषित करने के लिए उपमा, रूपक, अप्रस्तुतप्रशंसा, विरोध,
उत्प्रेक्षा, काव्यलिंग प्रभृति अलंकारों का आविर्भाव हुआ है।

गुण—शरीर में किसी न किसी प्रकार से कोई न कोई गुण अवश्य
विद्यमान होता है। काव्य में माधुर्य, ओज प्रभृति गुणों की विद्यमानता है।

रीति—शरीर की बनावट जैसे अपना महत्व रखती है, उसी प्रकार
काव्य के शरीररूपी शब्द की बनावट गौड़ी, पांचाली, विदर्भी प्रभृति
रीतियों पर निर्भर है।

दोष—शरीर में दोष होते हैं। कोई शरीर बेडौल होता है, कोई शरीर
किसी दूसरे प्रकार से दुष्ट होता है। इसी प्रकार शरीर के स्थानी शब्द भी
श्रुतिकटुत्व प्रभृति दोषों से पूर्ण मिलते हैं।

अब रहा काव्य का दूसरा भाग—रस। रस का काव्य में वह स्थान
है, जो शरीर में आत्मा का है। आत्मा है तो शरीर किसी संज्ञा-
विशेष का अधिकारी है, नहीं तो उसे शव कहा जाता है। इसी प्रकार रस

होगा तो काव्य सच्चे शब्दों में काव्य पद का अधिकारी है, नहीं तो कभी
दमात्र कहा जायगा। रस एक आनन्द का नाम है, जिसका [illegible]
ई विरला ही प्राणी करता है। इसी आनन्दोत्पादक शब्द को का[illegible]
जाती है।—

इन दो भागों के अतिरिक्त एक और भाग भी है, जो दोनों भागों को परस्पर सम्मिलित होने में विशेष सहायता प्रदान करता है। वह भाग है छंद। गति और यति से पूर्ण लयमय युक्त शब्दों की परिमिति को छंद कहते हैं। छंद एक संगीत है, जो शब्द को अपना प्रभाव उत्पन्न करने में विशेष मदद देता है। छन्द में तुले हुए तुल्य शब्द संगठित हो जाते हैं, जो प्रकीर्ण शब्दों की अपेक्षा प्रभाव उत्पन्न करने में बहुत शीघ्र सफल होते हैं। क्यों नहीं? संगठन में जो शक्ति है, उतनी असंगठन में नहीं। छंद में एक गति है, जिससे शब्द सिंह-द्वार से निकलने वाले सैनिकों की तरह कूदते-फाँदते निराली चाल से चलते हैं। छंद काव्य की प्रौढ़ता का समर्थक है, आवश्यक अंग नहीं।

काव्य के भेद

काव्य सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त होता है—एक [illegible] और दूस[illegible] श्रव्य। दृश्य वह काव्य है, जो आँख से प्रत्यक्ष किया [illegible]। कानों से प्रत्यक्ष होने वाले काव्य को श्रव्य काव्य कहते हैं। श्रव्य काव्य पुनः दो रूपों में विभक्त है—एक गद्य और दूसरा पद्य। छन्द-शून्य रचना को गद्य और छन्द-युक्त रचना को पद्य कहा जाता है। पद्य काव्य के पुनः दो भेद किये जाते हैं—एक प्रबन्ध काव्य और दूसरा मुक्तक काव्य। जिन अनेक पद्यों में किसी विशेष कथानक सूत्र की उपलब्धि होती हो, उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं तथा जो पद्य एक होता हुआ भी स्वतन्त्र तथा स्वतः पूर्ण होता है, उसे मुक्तक कहा जाता है। काव्य के भेदोपभेदों का मानचित्र इस बनेगा—

मुक्तक रचना

मुक्तक-रचना में एक पद्य अपनी सत्ता को व्यक्त करने के लिए किसी पूर्वापर पद्य पर निर्भर नहीं रहता। इन्हीं शब्दों को अभिनवगुप्ताचार्य ने इस प्रकार कहा है—

'पूर्वापरनिरपेक्षा हि येन रसचर्वणा क्रियते, तन्मुक्तकम्।'

अर्थात् पूर्वापर प्रसंग और पद्यों का सहारा न होने पर भी जिसमें रस की अभिव्यक्ति हो जाय, उसे मुक्तक कहते हैं। मुक्तक-रचना के विषय में निम्न मत बड़ा महत्त्व रखते हैं—

'मुक्तक एक ऐसी मुक्तामणि है, जिसे चाहे आप शतकों, सप्तशतकों की पिटारियों में संग्रह कर या किसी प्रबंध-सूत्र में गूँथें।'

—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

पिटारियों की आवश्यकता है, प्रबन्धरूपी धागे की नहीं। मुक्तक जब कभी प्रबंधरूपी धागे में गूँथने के लिए विंधा जायगा तो उसकी अपनी चमक जाती रहेगी।'

—अज्ञात

प्रबन्ध-काव्य तथा मुक्तक-काव्य की तुलना करने पर दोनों का महत्त्व पृथक् पृथक् मिलता है। प्रबन्ध-काव्य मुक्तक का स्थान नहीं ले सकता और न मुक्तक प्रबन्ध का। किसी कथाविशेष का क्षेत्र प्रबंध-रचना को छोड़कर मुक्तक नहीं बन सकता। नीति, सुभाषित, या किसी छोटी सी घटना को व्यक्त करने के लिए प्रबंध-काव्य की अपेक्षा मुक्तक-काव्य कई गुना अधिक महत्त्व रखता है। ऐसा होने पर भी काव्य का सौष्ठव मुक्त-रचना में अत्यधिक है। प्रबंध-रचना में कहीं पर शिथिल, कहीं पर दूषित तथा कहीं पर अपूर्ण पद्य गूँथे जाते हैं। प्रबंध में कवि को अपना भाव प्रकट करने के लिए बड़ा लम्बा-चौड़ा क्षेत्र मिल जाता है। मुक्तक-रचना में ऐसा नहीं होता। मुक्तक-रचना स्वयं पूर्ण है, संगठित है और स्वतः प्रकाशक है। मुक्तक-रचना के लिए कवि को चौकन्ना रहकर लेखनी चलानी पड़ती है।

कवि-जगत् में मुक्तक-रचना को बड़ा सम्मान लब्ध है। परस्पर गोष्ठी में मुक्तक-रचना को लेकर कवि बड़े ठाठ-बाठ से आता है। राज-सभाओं में प्रबंध-काव्य सुनने की किसी को भी फुरसत नहीं होती। वहाँ मुक्तकासव का एक घूँट सब को समान बाँट दिया जाता है। कथा और व्याख्यान के अवसरों पर मुक्तक काव्य का बड़ा रोब सा जमा रहता है। वाद-विवाद में भी मुक्तक रचना की पूछताछ होती है, प्रबंध की नहीं। किसी उदाहरण विशेष के लिए जितनी मुक्तक-रचना को प्रधानता दी जाती है, उतनी प्रबंध-रचना को नहीं।

मुक्तक-रचना के उपयोगी छंद

मुक्तककार चाहे किसी भी छंद में अपनी रचना व्यक्त कर सकता है पर अपना क्षेत्र चुनने में स्वयं स्वतंत्र है। उसका विषय अपने अनुकूल

मुक्तक रचना

मुक्तक-रचना में एक पद्य अपनी सत्ता को व्यक्त करने के लिए किसी पूर्वापर पद्य पर निर्भर नहीं रहता। इन्हीं शब्दों को अभिनवगुप्ताचार्य ने इस प्रकार कहा है—

'पूर्वापरनिरपेक्षा हि येन रसचर्वणा क्रियते, तन्मुक्तकम्।'

अर्थात् पूर्वापर प्रसंग और पद्यों का सहारा न होने पर भी जिसमें रस की अभिव्यक्ति हो जाय, उसे मुक्तक कहते हैं। मुक्तक-रचना के विषय में मिश्र [illegible] रखते हैं—

'मुक्तक एक ऐसी मुक्तामणि है, जिसे चाहे आप अलग रखें, मालाकारों की लड़ियों में संग्रह करें या किसी प्रबंध-सूत्र में गूँथें।'

पिटारियों की आवश्यकता है, प्रबन्धरूपी धागे की नहीं। मुक्तक जब कभी प्रबंधरूपी धागे में गूँथने के लिए बिंधा जायगा तो उसकी अपनी चमक जाती रहेगी।'

—अज्ञात

प्रबन्ध-काव्य तथा मुक्तक-काव्य की तुलना करने पर दोनों का महत्त्व पृथक् पृथक् मिलता है। प्रबन्ध-काव्य मुक्तक का स्थान नहीं ले सकता और न मुक्तक प्रबन्ध का। किसी कथाविशेष का क्षेत्र प्रबंध-रचना को छोड़कर मुक्तक नहीं बन सकता। नीति, सुभाषित, या किसी छोटी सी घटना को व्यक्त करने के लिए प्रबंध-काव्य की अपेक्षा मुक्तक-काव्य कई गुना अधिक महत्त्व रखता है। ऐसा होने पर भी काव्य का सौष्ठव मुक्त-रचना में अत्यधिक है। प्रबंध-रचना में कहीं पर शिथिल, कहीं पर दूषित तथा कहीं पर अपूर्ण पद्य गूँथे जाते हैं। प्रबंध में कवि को अपना भाव प्रकट करने के लिए बड़ा लम्बा-चौड़ा क्षेत्र मिल जाता है। मुक्तक-रचना में ऐसा नहीं होता। मुक्तक-रचना स्वयं पूर्ण है, संगठित है और स्वतः प्रकाशक है। मुक्तक-रचना के लिए कवि को चौकन्ना रहकर लेखनी चलानी पड़ती है।

कवि-जगत् में मुक्तक-रचना को बड़ा सम्मान लब्ध है। परस्पर गोष्ठी में मुक्तक-रचना को लेकर कवि बड़े ठाठ-बाठ से आता है। राज-सभाओं में प्रबंध-काव्य सुनने की किसी को भी फ़ुरसत नहीं होती। वहाँ मुक्तकासव का एक घूँट सब को समान बाँट दिया जाता है। कथा और व्याख्यान के अवसरों पर मुक्तक काव्य का बड़ा रोब सा कसा रहता है। वाद-विवाद में भी मुक्तक रचना की पूछताछ होती है, प्रबंध की नहीं। किसी उदाहरण विशेष के लिए जितनी मुक्तक-रचना को प्रधानता दी जाती है, उतनी प्रबंध-रचना को नहीं।

मुक्तक-रचना के उपयोगी छंद

मुक्तककार चाहे किसी भी छंद में अपनी रचना व्यक्त कर सकता है। वह अपना क्षेत्र चुनने में स्वयं स्वतंत्र है। उसका विषय अपने अनुकूल छंद

मुक्तक रचना

मुक्तक-रचना में एक पद्य अपनी सत्ता को व्यक्त करने के लिए किसी पूर्वापर पद्य पर निर्भर नहीं रहता। इन्हीं शब्दों को अभिनवगुप्ताचार्य ने इस प्रकार कहा है—

'पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते, तन्मुक्तकम्।'

अर्थात् पूर्वापर प्रसंग और पद्यों का सहारा न होने पर भी जिसमें

पिटारियों की आवश्यकता है, प्रबन्धरूपी धागे की नहीं। मुक्तक जब कभी प्रबंधरूपी धागे में गूँथने के लिए बिंधा जायगा तो उसकी अपनी चमक जाती रहेगी।'

—अज्ञात

प्रबन्ध-काव्य तथा मुक्तक-काव्य की तुलना करने पर दोनों का महत्त्व पृथक् पृथक् मिलता है। प्रबन्ध-काव्य मुक्तक का स्थान नहीं ले सकता और न मुक्तक प्रबन्ध का। किसी कथाविशेष का क्षेत्र प्रबंध-रचना को छोड़कर मुक्तक नहीं बन सकता। नीति, सुभाषित, या किसी छोटी सी घटना को व्यक्त करने के लिए प्रबंध-काव्य की अपेक्षा मुक्तक-काव्य कई गुना अधिक महत्त्व रखता है। ऐसा होने पर भी काव्य का सौष्ठव मुक्त-रचना में अत्यधिक है। प्रबंध-रचना में कहीं पर शिथिल, कहीं पर दूषित तथा कहीं पर अपूर्ण पद्य गूँथे जाते हैं। प्रबंध में कवि को अपना भाव प्रकट करने के लिए बड़ा लम्बा-चौड़ा क्षेत्र मिल जाता है। मुक्तक-रचना में ऐसा नहीं होता। मुक्तक-रचना स्वयं पूर्ण है, संगठित है और स्वतः प्रकाशक है। मुक्तक-रचना के लिए कवि को चौकन्ना रहकर लेखनी चलानी पड़ती है।

कवि-जगत् में मुक्तक-रचना को बड़ा सम्मान लब्ध है। परस्पर गोष्ठी में मुक्तक-रचना को लेकर कवि बड़े ठाठ-बाठ से आता है। राज-सभाओं में प्रबंध-काव्य सुनने की किसी को भी फ़ुरसत नहीं होती। वहाँ मुक्तकासव का एक घूँट सब को समान बाँट दिया जाता है। कथा और व्याख्यान के अवसरों पर मुक्तक काव्य का बड़ा रोब सा कसा रहता है। वाद-विवाद में भी मुक्तक रचना की पूछताछ होती है, प्रबंध की नहीं। किसी उदाहरण विशेष के लिए जितनी मुक्तक-रचना को प्रधानता दी जाती है, उतनी प्रबंध-रचना को नहीं।

मुक्तक-रचना के उपयोगी छंद

मुक्तककार चाहे किसी भी छंद में अपनी रचना व्यक्त कर सकता है। वह [illegible] चुनने में स्वयं स्वतंत्र है। उसका विषय अपने अनुकूल छंद

चुनने के लिए उसे विवश करेगा। परन्तु मुक्तक-रचना में हर एक छंद स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। जहाँ मुक्तक-रचना का विषय सीमित है, वहाँ उसके लिए कुछ चुने हुए छंद ही काम आते हैं। ये छंद ये हैं—

अनुष्टुप, आर्या, उपजाति, शिखरिणी, शार्दूल, सवैया, मनहरण, हरिगीतिका, रोला, दोहा और सोरठा।

इन छंदों में भी अनुष्टुप् तथा दोहा लघुकाय होने से कवि-जगत् में अत्यन्त प्रिय समझे जाते हैं। हिंदी-संसार में दोहे का जो स्थान है, वही स्थान संस्कृत में अनुष्टुप् छंद का है। अनुष्टुप् तथा दोहे में भावों का व्यक्त करना काव्यकला की उत्तमता की पराकाष्ठा है।

भूमिका

दोहे का छन्दोज्ञान

दोहा अर्धसम छंद है। इसके चार चरण होते हैं। प्रथम और तृतीय चरण समान होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण समान होते हैं। अर्थात् दोहे के प्रथम और तृतीय चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। प्रथम और द्वितीय चरण को मिलाकर २४ मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों में जगण नहीं होता। सम चरण के अंत में एक गुरु तथा एक लघु होना अनिवार्य है।

दोहा दो प्रकार का होता है—एक 'समकल' दोहा और दूसरा 'विषमकल' दोहा। जिसमें समान मात्रा वाले पद के साथ साथ समान मात्रा वाले पद चलें, उसे समकल दोहा कहते हैं। जिसमें विषम मात्राओं के साथ विषम मात्रा वाले पद चलें, उसे विषमकल दोहा कहते हैं।

जिस दोहे के विषम चरण में जगण का प्रयोग हो, उसे चंडाल दोहा कहते हैं।

गुरु लघु के भेद करने पर तथा संख्या करने पर २३ प्रकार के दोहे होते हैं।

दोहे की निरुक्ति

दोहे का दूसरा नाम 'दूहा' या 'दोहरा' है। दूहा नाम राजस्थानी है और 'दोहरा' नाम पंजाबी है। 'दोहरे' का अर्थ है 'दुगुना'। जो दो चार समानरूप से दुहराया जाय, उसे दोहरा कहते हैं। इस दोहे में मात्राओं के आधार पर समकल के पीछे समकल पद दुहराये जाते हैं और विषमकल के पीछे विषमकल पद दुहराये जाते हैं। चरणों के आधार पर प्रथम और द्वितीय चरण मिलाकर एक खंड बनता है। उसी खंड को तृतीय और चतुर्थ चरण का खंड बनाकर दुहराया जाता है।

दोहे में अंत्यानुप्रास आवश्यक अंग बन गया है यद्यपि छंदःशास्त्र के अनुसार अन्त्यानुप्रास कोई आवश्यक नहीं है। कई लोग अंत्यानुप्रास की तुकांत के कारण इसको 'दोहरा' कहते हैं। पर यह गलत है।

संस्कृत-साहित्य में दोहा-निर्माण बिलकुल नहीं हुआ। कहीं कोई बन गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

दोहे की परिभाषा

मुक्तक-रचनाओं में जितना दोहे को अपनाया गया है, उतना ही इसके विषय में कहा भी गया है। किसी अन्य छंद के ऊपर साहित्यिक परिभाषाएँ नहीं लिखी गईं, दोहे की ही साहित्यिक परिभाषाएँ मिलती हैं। [illegible] के [illegible] [illegible] निर्देशार्थ के लिए कुछ परिभाषाएँ उद्धृत की जाती हैं—

दीरघ दोहा अर्थ के आखर थोड़े आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥

'सप्तशती' शब्द से बना है। संस्कृत-साहित्य में दुर्गासप्तशती बड़ी प्रसिद्ध रचना है। सातवाहन की गाथा-सप्तशती प्राचीन है। इन्हीं सप्तशतियों से हिन्दी-संसार में सतसइयों का चलन हुआ है। आज तक जितनी सतसइयाँ प्रकाश में आई हैं, वे सब अपना गौरव रखती हैं।

कबीर और रहीम की दोहावलियाँ नीति तथा उपदेश पर निर्भर हैं। बिहारीसतसई, रामसतसई, मतिरामसतसई, विक्रमसतसई, रसनिधि सतसई; सब शृंगार से संबंध रखती हैं। वृंदसतसई एक दृष्टान्तसतसई कही जा सकती है।

आधुनिक युग में वीरसतसई, करुणसतसई तथा श्यामसतसई प्रमुख सतसइयाँ हैं। भाषा, विषय और रचनासौष्ठव के दृष्टिकोण से वीरसतसई सर्व-श्रेष्ठ रचना है। इस पर लेखक को मंगलापारितोषक मिला है। दुलारे-दोहावली भी निस्संदेह उच्चकोटि की रचना है। इस पर लेखक को देव-पुरस्कार मिला है। वीरसतसई तथा दुलारे-दोहावली में ब्रजभाषा का प्रदर्शन बड़ी उत्तमता से किया गया है।

प्रस्तुत संग्रह

हिन्दी-साहित्य में क्रम-प्राप्त सतसइयों तथा दोहावलियों को लेकर यह संग्रह प्रस्तुत किया गया है, जो कि 'दोहा-मानसरोवर' के नाम से प्रकाशित है और आपके हाथ में है। इसके दो भाग हैं। भक्तिकाल तथा रीतिकाल के साहित्य को लेकर 'प्रथम सोपान' नाम से एक भाग प्रकाशित है तथा वर्तमान युग को लेकर 'द्वितीय सोपान' नाम से दूसरा भाग प्रकाशित है।

संग्रह-साहित्य का महत्त्व

मौलिक साहित्य की अपेक्षा संग्रह-साहित्य का विशेष महत्त्व है। मौलिक रचना केवल एक ही मनोवृत्ति का परिचय कराती है। उसमें एक ही का रचना-कौशल व्यक्त होता है। मौलिक रचना में भली बुरी बातें

आ जाते हैं। परन्तु संगृहीत रचना में ऐसा नहीं होता। संगृहीत रचना के निम्नलिखित उद्देश्य पाये जाते हैं—

(क) विविध कवियों की रचना एक साथ रखने से उनकी तत्कालीन सामाजिक मनोवृत्ति का अच्छा प्रदर्शन होता है। प्रस्तुत संग्रह में तुलसीदास की रचना, मतिराम की रचना तथा वियोगी हरि की रचना को एक साथ पढ़ने से पता लगेगा कि तुलसीदास के समय में मनोवृत्ति भक्ति-पूर्ण थी। मतिराम के समय में सामाजिक मनोवृत्ति शृंगारपूर्ण थी। वियोगी-हरि की रचना में आधुनिकता का अधिक प्रवेश है। श्यामसतसई भक्तिप्रधान होती हुई भी आधुनिक मनोवृत्ति से खाली नहीं है।

(ख) विविध कवियों की भाषा तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखी जा सकती है। मुंज की भाषा कैसी है? तुलसीदास की भाषा कैसी है? मतिराम तथा विक्रमसाहि की भाषा में क्या अंतर है? वियोगी हरि तथा [illegible] शर्मा 'द्विजेश' की भाषा कैसी है? इन विविध भाषाओं का ऐतिहासिक तारतम्यज्ञान संग्रह-साहित्य से ही पूर्ण होता है।

(ग) कवियों के परम्परानुकरण का ज्ञान भी संग्रह-साहित्य से ही होता है। मतिराम, रसनिधि एवं विक्रमसाहि ने कहाँ कहाँ एक दूसरे का अनुकरण किया है? वृंद ने रहीम का, तुलसीदास ने कबीर का कितना और क्या अनुकरण किया है? यह बताना इस संग्रह का उद्देश्य है।

(घ) किस कवि का क्या स्थान है? इसका बोध भी संग्रह-ग्रंथों से पूर्ण होता है। नाना कवियों के तुलनात्मक विवेचन करने पर उनका तारतम्य निश्चित कराना संग्रह-ग्रन्थों का उद्देश्य होता है।

दोहा-मानसरोवर का लक्ष्य

प्रस्तुत 'दोहा-मानसरोवर' जिन उद्देश्यों को लेकर प्रकाशित किया गया है, उनका सार यह है—

भूमिका

१ छात्र को दोहा-साहित्य का सर्वांगीण ज्ञान कराने के लिए यह संग्रह प्रस्तुत किया है।

२ इस संग्रह के आधार पर दोहा-साहित्य का ऐतिहासिक ज्ञान सरलतापूर्वक हो सकता है।

३ इसमें कुछ पद्य ऐसे चुने हुए हैं, जो दो कवियों के नाम से चल रहे हैं। भाषा और विषय के बल पर वह पद्य एक कवि की निश्चित रचना निर्णीत किया जा सकता है।

४ एक ही विषय को लेकर रचना करने वाले कवियों के पद्य तारतम्य ज्ञान के लिए संग्रह में संगृहीत हैं।

५ कुछ कवियों ने पूर्वज कवि की रचना लेकर अपने नये ढंग से वर्णन किया है, ऐसे पद्य इसमें संगृहीत हैं।

६ इस संग्रह में ऐसे पद्य भी आ गये हैं, जो घुणाक्षरन्याय से परस्पर सादृश्य रखते हैं।

७ कवि की दूषित मनोवृत्ति का प्रदर्शन कराने के लिए भी कुछ पद्य चुने गये हैं। जैसे मतिराम कृत भाऊसिंह की व्यर्थस्तुति, भूषणकृत शिवाजी की अत्युक्तिपूर्ण चाटूक्तियाँ।

८ इस संग्रह में कवियों के अन्धानुकरण सूचक पद्य भी आ गये हैं। जैसे मतिराम, विक्रम, रामसहाय, तथा रसनिधि प्रभृति कवियों ने अपने आपको अत्यंत पापी और परमात्मा के प्रति उपालम्भ-पूर्ण रचनाएँ की हैं, यह केवल अंधानुकरणमात्र है।

९ छात्रों को लौकिक शिक्षा देने के लिए कबीर, रहीम, वृंद के उच्चकोटि के दोहे चुने गये हैं।

१० अलंकारों के उत्कृष्ट उदाहरण तथा रसों के पुष्ट उदाहरण इसमें संगृहीत हैं।

जैसे इस संग्रह को सर्वांगसुंदर बनाने के लिए कुछ उद्देश्य स्थिर किये गये हैं, वैसे ही कुछ दूषणों से बचने के लिए भी नियम सम्मुख रक्खे हैं। यथा—

(१) इसमें शृंगारपूर्ण तथा अश्लील रचनाएँ बिलकुल नहीं हैं।

(२) सामाजिक तथा साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को दूषित करने वाले पद्य इसमें नहीं आने पाये।

(३) ऐसे दोहे भी इसमें नहीं हैं, जो पूर्व प्रकाशित संग्रहों में संगृहीत हों। यदि ऐसे पद्यों को स्थान दिया भी गया होगा तो उनका कोई विशेष तथा महान् उद्देश्य होगा।

(४) इसमें उद्देश्यहीन पद्य कोई नहीं है।

आत्म-निवेदन

हिन्दी-प्रचार दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। यह संग्रह हिंदी के उच्च श्रेणी के छात्रों के लिए प्रस्तुत किया गया है।

इस मानसरोवर के निर्माण में हमारे चार वर्ष खर्च हुए हैं। चार वर्ष के अनन्तर इसे पुस्तक रूप में सुसंगठित देखकर हम बहुत ही विस्मित हैं। चार वर्ष के अंदर इस मानसरोवर में कई परिवर्तन आये, जिनका स्मरण करते ही हम दंग होकर रह जाते हैं। यह संग्रह हिंदी-संसार के सम्मुख उपस्थित करते हुए क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि साहित्यानुरागी सज्जन इसमें आने वाली भूलों को उपहास की सामग्री न बनाकर तथा 'परिवर्तन' एवं 'परिवर्धन' की भावना लेकर हमारे लिए किसी भी सम्मति का प्रदर्शन कर सकेंगे? यदि हमारी इस प्रार्थना को क्रियात्मक रूप दिया गया तो हम आगे के लिए उत्साहित हो सकेंगे तथा जिन [illegible] हुए हैं [illegible] का संकेत।

कवि-सूची

प्रथम सोपान

द्वितीय सोपान

तृतीय संस्करण की भूमिका

प्रिय पाठक महानुभाव ! आप जिस पुस्तक को पढ़ने जा रहे हैं, उ
ना और दूसरा संस्करण समाप्त हो रहा है। इतने थोड़े समय
करणों का निकल आना सचमुच पाठकों के कृपाकटाक्ष का फल ही
र तीसरा संस्करण पाठकों तक पहुँचाते हुए मुझे कुछ निवेदन भी करन

सर्वप्रथम, पंजाब यूनिवर्सिटी हिंदी-संस्कृत बोर्ड के माननीय स
प्रति कोटिशः निर्व्याज धन्यवाद है। सच तो यह है कि सहस्रों
सुपात्र कृपाभाव 'धन्यवाद' 'कृतज्ञता-प्रकाश' प्रभृति लौकिक सदाचा
ों बहुत ऊँचा है। पर किया क्या जाय, इधर मैं ठहरा शब्दरंक, दुनि
ग-हाल से बहुत दूर। कहाँ यह पुस्तक और कहाँ पंजाब की उच्चकक्ष
ान देकर दिया गया सम्मान ! राम राम !! इतनी बड़ी कृपा का धन्य
ंभव। पर मेरे जैसों के लिए धन्यवाद के अतिरिक्त और चारा ही क्या

दूसरा, मेरे कुछ इष्ट-मित्रों ने इसके लिये दो-चार सुझाव पेश किये

(१) दोहों के वर्ग और शीर्षक ठीक किये जाएँ। (२) कुछ कवि
बढ़ा दिये जाएँ। (३) इसकी भूमिका पूर्ण और विस्तृत होनी चाहि
(४) इसका एक टीकायुक्त संस्करण भी छपवाया जाय।

इन सुझावों को सुझाने वाले मित्र सचमुच हृदय से अभिनन्द
हैं। पर इस संकटकाल में जब कि कागज दिन-प्रतिदिन अलभ्य होता जा
है—मित्रों की आज्ञा मेरे लिये सिर-आँखों पर लेते हुए भी कालान्त
आचरणीय हो सकती है, इस समय नहीं। मैं अपने इष्ट-मित्रों को वि
दिलाता हूँ कि आपके ये सुझाव मेरे हृदय में सदा आदरार्ह स्थान पर र

जिन महानुभावों ने इसके निर्माण में मेरा दाहिना हाथ ब
सहायता प्रदान की है, उनके प्रति मैं आभारी हूँ। सूखा-सा धन्यवाद क
उनका भार अपने कन्धों से हटाना नहीं चाहता।

एक बात विद्यार्थियों के लिये भी:—इस पुस्तक की जितनी कुंजियाँ छ
उनके अर्थों और भावों पर विश्वास करना सरासर भूल है। उनमें अने
त्रुटियाँ रह गई हैं। छात्रों के लाभार्थ शुद्ध कुंजी का प्रबन्ध किया जा रहा ह

श्रीरामनिकेतन, मुलतान
[illegible], ६ दिसम्बर १९४२

निवेदक—
चन्द्रकान्त शास्त्री
(शास्त्री, हिन्दी-प्रभाक

दोहा-मानसरोवर

प्रथम सोपान

(प्राचीन कवियों के उत्तमोत्तम दोहे)

कबीर

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया बताय ॥१॥

यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं तौ भी सस्ता जान ॥२॥

ऐसा कोई ना मिला सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यों सुनै बधिक का गीत ॥३॥

सतगुरु साचा सूरमा नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर ॥४॥

सुख के माथे सिलि परै (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की पल पल नाम रटाय ॥५॥

लेने को सतनाम है देने को अनदान।
तरने को आधीनता बूड़न को अभिमान ॥६॥

दुख में सुमिरन सब करैं सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय ॥७

केसन कहा बिगारिया जो मूँड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये जामे विषै विकार ॥८॥

कबिरा रसरी पाँव में कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगारा कूच का बाजत है दिन रैन ॥९॥

कबिरा गर्व न कीजिये काल गहे कर केस।
ना जानों कित मारि है क्या घर क्या परदेस ॥१०॥

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि कर भये कबीर उदास ॥११॥

झूठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥१२॥

पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगा ज्यों तारा परभात ॥१३॥

रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥१४॥

आज कहै कल्ह भजूँगा काल कहै फिर काल।
आज काल के करत ही औसर जासी चाल ॥१५॥

आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥१६॥

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥१७॥

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय ॥१८॥

पाँचो नौबत बाजती होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥१९॥

यह तन काँचा कुम्भ है लिये फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया कछु नहिं आया हाथ ॥२०॥

आये हैं सो जायँगे राजा रंक फ़कीर।
क सिंघासन चढ़ि चले एक बँधे जंजीर ॥२१

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय ॥२

तू मत जानै बावरे मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा सो अपना नहिं होय ॥

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं

माली आवत देखिकै कलियाँ करी पुकार
फूली फूली चुनि लिये कालि हमारी बार ॥

भक्ति भाव भादों नदी सबै चलीं घहराय।
सरिता सोइ सराहिये जो जेठ मास ठहराय ॥२६॥

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव।
बीर वह क्यों मिले निष्कामी निज देव ॥२

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञ्जर बसै प्रेम कहावै सोय ॥३८॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै प्रेम कहावै सोय ॥३९॥

जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता मैं दो न समाहिं ॥४०॥

जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की साँस लेत बिन प्रान ॥४१॥

जल में बसै कमोदिनी चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास ॥४२॥

तत्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान ॥४३॥

कबिरा माला मनहिं की और सँसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं गले रहँट के देख ॥४४॥

बिनवत हौं कर जोरिकै सुनिये कृपा-निधान।
साधु सँगति सुख दीजिये दया गरीबी दान ॥४५॥

अवगुन मेरे बाप जी बकसु गरीबनिवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥४६॥

साहिब तुमहिं दयाल हौ तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझै और न ठौर ॥४७॥

माखी गुड़ में गड़ि रही पङ्ख रह्यो लपटाय।
हाथ मलै औ सिर धुनै लालच बुरी बलाय ॥५८॥

सहज मिलै सो दूध सम माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम जामें ऐंचातानि ॥५६॥

जो आवै तो जाय नहिं जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की समझ लेहु मन माहिं ॥६०॥

रूखा सूखा खाइकै ठंडा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥६१॥

कबिरा साईं मुझको रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ रूखी छीनि न लेय ॥६२॥

सतगुरु दीनदयाल हैं दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था पल में पहुँचा जाय ॥६३॥

मरिये तो मरि जाइये छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार ॥६४॥

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूँढै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है दुनिया जानै नाहिं ॥६५॥

हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत ॥६६॥

साध सती औ सूरमा ज्ञानी औ गज-दंत।
एते निकसि न बहुरें जो जुग जाहि अनन्त ॥६७॥

मधुर वचन है औषधी कटुक वचन है तीर।
स्रवन द्वार है संचरै सालै सकल सरीर ॥७८॥

दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिये भागि ॥७९॥

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ ॥८०॥

जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं चारों दीरघ रोग ॥८१॥

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप ॥८२॥

कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै तो जगत गुरू वह दास ॥८३॥

साँचे कोइ न पतीजई झूँठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय ॥८४॥

जहाँ दया तहँ धर्म है जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप ॥८५॥

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना मुझ सा बुरा न कोय ॥८६॥

हाथी दिल में राखिये तू क्यों निरदइ होय।
... ई के ... जीव है कीड़ी कुंजर सोय ॥

आसपास जोधा खड़े सभी बजावैं गाल।
मंझ महल में ले चला ऐसा काल कराल ॥८८॥

भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥८९॥

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाड़ि न जाय ॥९०॥

सब आये उस एक में डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥९१॥

* * *

तुलसी

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम।
जेहि सुमिरे सिध होत है तुलसी जन-मन-काम ॥१॥

ससि रवि सीता राम नभ तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो कुतसित तम कर हान ॥२॥

राम सरूप अनूप जल हरत सकल मल-मूल।
तुलसी मम हिय जो लगहि उपजत सुख अनुकूल ॥३॥

बरु मराल मानस तजै चंद सीत रवि घाम।
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ॥४॥

राम-चरन-अवलंब बिनु परमारथ की आस।
चाहत बारिद-बुंद गहि तुलसी चढ़न अकास ॥५॥

राम नाम तरु-मूल रस आठ पात फल एक।
जुग लसंत सुभ चारि जग बरनत निगम अनेक ॥६॥

जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुरजोधन कहँ बोधि किन आए स्याम सुजान ॥७॥

जीव चराचर जहँ लगे है सब को प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसेउ घन सों सहज सनेह ॥१८॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस सलिल चातक बलित रहेउ भुवन भरि तोर ॥१९॥

माँगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत की उपमा देत लजात ॥२०॥

तुलसी तीनों लोक महँ चातकही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता किए दूसरो नाथ ॥२१॥

ऊँची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनस्याम सों कै दुख सहै सरीर ॥२२॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
यातें प्रेम पयोधि बर तुलसी जोग न रोख ॥२३॥

पवि पाहन दामिनि गरज अति झकोर खर खीझ।
दोस न प्रीतम रोस लखि तुलसी रागहिं रीझ ॥२४॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै जब चातक मत लेहु ॥२५॥

उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक जलद तजि कबहुँ आन की ओर ॥२६॥

गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरि पूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सब धूरि ॥२७॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहिं बार ही बार।
तात न तरपन कीजियो बिना बारि-धर-धार ॥२८॥

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ जस चातक तुलसीदास ॥२९॥

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव राखत सिय-रघुनाथ ॥३०॥

कै ममता करु राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दुइ महँ एक अब खेल छाँड़ि छल खेलु ॥३१॥

तुलसी-पति दरबार मों कमी बस्तु कछु नाहिं।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिं ॥३२॥

आसन बसन सुत नारि सुख पापिहु के घर होय।
संत-समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय ॥३३॥

तुलसी मीठे बचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है परिहरु बचन कठोर ॥३४॥

तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निरसंक।
आदि अंत निरबाहिबो जैसे नव को अंक ॥३५॥

राम कामना-हीन पुनि सकल-काम-दातार।
यहीं तें परमातमा अव्यय अमल उदार ॥३६॥

राम सदा सम सील-धर सुख-सागर गुन-धाम।
आज काल्ह औरहु नित [illegible] सह अभिराम ॥३७॥

जथा धरनि सब बीज-मय　नखत अकास निवास।
तथा राम सब-धरम-मय　जानत　तुलसीदास ॥३८॥

रामहिँ जानैं संत बर　संतहिँ राम प्रमान।
संतहिँ केवल राम प्रभु　रामहि संत न आन ॥३९॥

तुलसी संत सु-अंब तरु　फूलि फरहिँ पर-हेतु।
ये इत तें पाहन हनैं　वे उत तें फल देतु ॥४०॥

सुख दुख दोनों एक सम　संतन के मन माहिँ।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि　भार भीजवो नाहिँ ॥४१॥

तुलसी तरु फूलत फरत　जेहि विधि कालहि पाय।
तैसे ही गुन-दोख-गत　प्रगटत समय सुभाय ॥४२॥

सुमिरु राम भजु राम-पद　देखु राम सुनु राम।
तुलसी समुझहु राम कहँ　अह-निसि यह तुव काम ॥४३॥

बनो बनायो है सदा　समुझ रहित हो सूल।
अपन बरन केहि काम को　विना बास को फूल ॥४४॥

तन सुखाइ पंजर करै　धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना　विना विचारे ग्यान ॥४५॥

कलप-विरिछ को चित्र लिखि　कीन्हे विनय हजार।
चित्त न पावइ ताहि सों　तुलसी देखु विचार ॥४६॥

झटकत पद अद्वैतता　अटकत ग्यान गुमान।
सटकत वितरन तें बिहरि　फटकत तुख अभिमान ॥४७॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहिं वार ही वार।
तात न तरपन कीजियो विना वारि-धर-धार॥२८॥

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ घर चातक तुलसीदास॥२९॥

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव राखत सिय-रघुनाथ॥३०॥

कै ममता कर राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दुइ महँ एक अब खेल छाड़ि छल खेलु॥३१॥

तुलसी-पति दरबार मों कमी वस्तु कछु नाहिँ।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिँ॥३२॥

धाम धरम सुत नारि सुख पापिहु के घर होय।
संत-समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय॥३३॥

तुलसी मीठे बचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन इक मंत्र है परिहरु बचन कठोर॥३४॥

तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निरसंक।
आदि अंत निरबाहिबो जैसे नव को अंक॥३५॥

राम कामना-हीन पुनि सकल-काम-दातार।
स्वामी हैं परमात्मा अव्यय अमल उदार॥३६॥

राम सरिस सम सील-धर सुख-सागर पर-धाम।
अस कारन अहैं नित समरथ पद अभिराम॥३७॥

ससि कर सुखद सकल जगत को तेहि जानत नाहिं।
कोक कमल कहँ दुखद कर जदपि दुखद नहिं ताहि ॥५८॥

चंद्र देत श्रमि लेत बिख देखहु मनहिं विचार।
तुलसी तिमि सिव संत वर महिमा विसद अपार ॥५९॥

भूमि भानु अलधूल अप सकल चराचर-रूप।
तुलसी बिनु गुरु ना लहै यह मत अमल अनूप ॥६०॥

तुलसी कबनहुँ जोग तें सत-संगति जब होय।
राम-मिलन संसय नहीं कहहिं सु-मति सब कोय ॥६१॥

सेवक पद सुख-कर सदा दुख-द सेव्य-पद जान।
जथा बिभीखन रावनहि तुलसी समुझु प्रमान ॥६२॥

बेद कहत सब को बिदित तुलसी अमिय-सुभाव।
करत पान अरु रुज हरत अबिरल अमल प्रभाव ॥६३॥

समता स्वारथ-हीन तें होत सु-बिसद बिबेक।
तुलसी यह नितही कहै जिनहिं अनेक न एक ॥६४॥

सब स्वारथ स्वारथ रटत तुलसी घटत न एक।
ज्ञान-रहित अज्ञान-रत कठिन कु-मन कर टेक ॥६५॥

स्वारथ सो जानहु सदा जासों बिपत नसाय।
तुलसी गुरु उपदेस बिनु सो किमि जानेउ जाय ॥६६॥

क्षेम-धरन करतार कर तुलसी-पति पर-धाम।
सो बरतर ता सम न कोउ सब बिधि पूरन-काम ॥६७॥

जहाँ रहत बरनत तहाँ तुलसी नित्य सरूप।
भूत न भावी ताहि कह अतिसय अमल अनूप ॥७८॥

कारज-रत करता समुझि सुख दुख भोगत सोइ।
तुलसी स्री-गुरुदेव बिन दुख-प्रद दूरि न होइ ॥७९॥

अनुस्वार सूछम जथा जथा बरन असथूल।
जो सूछम असथूल सो तुलसी कबहुँ न भूल ॥८०॥

गुरु करिबो सिद्धांत यह होइ जथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाइ उर तुलसी मिटत बिरोध ॥८१॥

सत-संगति को फल यही संसय रहइ न लेस।
है असथिर सुचि सरल चित पावै पुनि न कलेस ॥८२॥

जौ भावी कछु है नहीं भूठो गुरु सत-संग।
ऐसि कुमति तें छूट गुरु संतन को परसंग ॥८३॥

बिनु काटे तरु-बर जथा मिटै कौन बिधि छाहिं।
त्यों तुलसी उपदेस बिनु निहसंसय कोउ नाहिं ॥८४॥

ब्राह्मन बर बिद्या-बिनय सुकृति-बिबेक-निधान।
पथ-रति अनय-अतीत मति सहित दया स्रुति-मान

बिनय छत्र सिर जासु के प्रति पद पर-उपकार।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल-ब्यभिचार

बैस्य बिनय मग्रु पग्रु धरै हरै कटुक बर बैन
सदय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन

करता कारन करम तें पर परमातम ग्यान।
होत न बिनु उपदेस गुरु जौ पढ़ बेद पुरान ॥९८॥

दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि परत तेहि नाहि।
लखत न कंटक मीन जिमि असन भखत भ्रम माहिं ॥९९॥

बातहि बातहि बनि पड़ै बातहि बात नसाय।
बातहि आदिहि दीप भौ बातहि अंत बुताय ॥१००॥

बातहि तें बनि आवही बातहि तें बन जात।
बातहि तें बरबर मिलत बातहि तें घौरात ॥१०१॥

बात बिना अतिसय विकल बातहि तें हरखात।
बनत बात बर बात तें करत बात बर घात ॥१०२॥

तुलसी जाने बात बिनु बिगरत हर एक बात।
अनजाने दुख बात के जानि परे कुसलात ॥१०३॥

प्रेम बैर अरु पुन्य अघ जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिं सुजान ॥१०४॥

बंचक-विधि-रत नय-रहित विधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ विदित बर नरक निसेनी तीन ॥१०५॥

सद्धा भजन गुरु साधु द्विज जीव-दया सम ज्ञान।
सुखन्द सु-नय-रत सत्य-व्रत सरग सप्त सोपान ॥१०६॥

जे नर जग गुन-दोख-जुत तुलसी बदत विचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी उदय-अस्त-ब्यवहार ॥१०७॥

नीच चंग-सम जानियो सुनि लखि तुलसी-दास।
ढीलि देत महि गिरि परत खैंचत चढ़त अकास॥१२८॥

कलह न जानब छोट करि कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर जरत धनिक-धन-धाम॥१२९॥

तुलसी तीनि प्रकार तें हित अनहित पहिचानि।
परबस परे परोस बसि परे मामला जानि॥१३०॥

दुरजन बदन कमान सम बचन बिमुंचत तीर।
सज्जन उर बेधत नहीं छमा सनाह सरीर॥१३१॥

* * *

रहीम

जीवन-परिचय

रहीम का पूरा नाम नवाब अब्दुलरहीम खानखाना था। इनके बाप का नाम बैरम खाँ था। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ। ये अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री और दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अकबर इनका बहुत आदर करते थे।

रहीम अरबी, फ़ारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। ये बड़े धर्मी, परोपकारी सज्जन और श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे। इनका स्वभाव बहुत ही सरल और दयापूर्ण था। इनको संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। सं० १६८२ में ये परलोक सिधारे।

जो मुग़ल-साम्राज्य का उच्च पदाधिकारी, सहृदय, विद्वान्, सुकवि, रसिक, दयालु, दानवीर और भक्त हो, उसके जीवन की घटनाएँ भी बड़ी मार्मिक और अद्भुत होंगी, इसमें क्या सन्देह है।

रहीम की कविता नीति और ज्ञान के तत्त्व से पूर्ण है। छोटे छोटे दोहों में इन्होंने जो बड़े बड़े भाव भर दिये हैं, वे मन को मुग्ध कर लेते हैं। इनकी कविता का प्रधान गुण सरलता है। हिन्दी ही में नहीं, संस्कृत और फ़ारसी आदि भाषाओं में भी रहीम ने बड़ी सरस कविता की है।

रहीम की रचनाएँ—खेट कौतुक, रहिमन सतसई, रास पंचाध्यायी आदि हैं।

काह कामरी पामरी जाड़ु गए ते काज।
रहिमन भूख बुझाइए कैसो मिलै अनाज ॥१८॥

रहिमन जिह्वा बावरी कहि गइ सरग पताल।
आपु तौ कहि भीतर भई जूती खात कपाल ॥१९॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि गंग नाम भो धीम।
काकी महिमा नहिं घटी पर घर गए रहीम ॥२०॥

खर्चु बढ़ो रोजी घटी नृपति निठुर मन कीन।
रहिमन वे नर का करैं ज्यों थोरे जल मीन ॥२१॥

खीरा सिर तें काटिए मलिए लोन लगाइ।
रहिमन करुए मुखन को चहियत यही सजाइ ॥२२॥

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान ॥२३॥

गहि सरनागत राम की भवसागर की नाव
रहिमन जगत-उधार कर और न कछू उपाव ॥२४॥

खारा प्यारा जगत में छाला हित कर लेइ।
ज्यों रहीम आटा लगे त्यों मृदंग सुर देइ ॥२५॥

छमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात ॥२६॥

जब लगि वित्त न आपने तब लगि मित्त न कोइ।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिन रवि ताकर रिपु होइ ॥२७॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥३८॥

जो बड़ेन को लघु कहौ नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे दुख कछु मानत नाहिं ॥३९

जो पुरुषारथ तें कहूँ सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम ॥४०

जो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोइ।
बारे उजियारो लगै बढ़े अँधेरो होइ ॥४१

जो रहीम होती कहूँ प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो आप बड़ाई साथ ॥४२

जो रहीम विधि बड़ किए को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढ़ि ॥४३

जो घर ही में घुसि रहैं कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले पथ के अपत करील ॥४४

टूटे सुजन मनाइए जो टूटें सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिए टूटे मुकताहार ॥४५

तनु रहीम है कर्म-बस मन राखो वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों खैंचत गुन के जोर ॥४६

तबहीं लग जीबो भलो दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत हमहिं न रुचै रहीम ॥४७

तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित सम्पति सँचहिं सुजान ॥४८॥

ताहि प्रमान नालियो भलो जो सब दिन ठहराइ।
उमड़ि चलै जल पार तें जो रहीम बढ़ि जाइ ॥४९॥

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक-रटनि सरवरि को कोउ नाहिं ॥५०॥

दिव्य दीनता के रसहिं का जानै जग अन्धु।
भली बिचारी दीनता दीनबन्धु-से बन्धु ॥५१॥

दीन सबन को लखत है दीनहिं लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबन्धु सम होइ ॥५२॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं धरै रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करैं ऐसे वे रघुबीर ॥५३॥

दोहा दीरघ अर्थ के आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥५४॥

धन थोरो इज्जति बड़ी कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू चिथड़न माहिं समात ॥५५॥

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि कहा भौंर को भाय ॥५६॥

धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाइ ॥५७॥

धूरि धरत नित सीस पै कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी तरी सो ढूँढ़त गजराज ॥५८॥

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में दाँव न अपने हाथ ॥५९॥

नैन सलोने अधर मधु कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर अरु मीठे पर लौन ॥६०॥

पात-पात को सींचिवो बरी-बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि तें काज सरैगो कौन ॥६१॥

पाँच रूप पाण्डव भए रथ-वाहक नलराज।
दुरदिन परे रहीम कहि बड़ेन किए घटि काज ॥६२॥

रहिमन घरिया रहँट की त्यों ओछे की डीठि।
रीती सनमुख होति है भरी दिखावै पीठि ॥६३॥

पूरुष पूजैं घौहरा तिय पूजैं रघुनाथ।
कहु रहीम कैसे बनै भैंस-बैल को साथ ॥६४॥

बड़े दीन को दुख सुने लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती कहु रहीम पहिचानि ॥६५॥

बड़े बड़ाई ना करैं बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहैं लाख टका है मोल ॥६६॥

बसि कुसंग चाहत कुसल यह रहीम
महिमा घटी समुद्र की रावन बसे

मान सहित विष खायकै संभु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत पियो राहु कटायो सीस ॥७८॥

मूढ़-मण्डली मैं सुजन ठहरत नाहिं बिसेखि।
स्याम कचन मैं सेत ज्यौं दूरि कीजियत देखि ॥७९॥

यह रहीम निज सँग लै जनमत जगत न कोइ।
बैर प्रीति अभ्यास जस होत होत ही होइ ॥८०॥

रहिमन ओछे नरन ते तजौ बैर औ प्रीति।
चाटे-काटे स्वान के दूहूँ भाँति बिपरीति ॥८१॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं तोयवन्त सर ताल।
रहिमन एकै मानसर मनसा रमत मराल ॥८२॥

ये रहीम दर-दर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो अब रहीम वे नाहिं ॥८३॥

यों रहीम सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यौं बड़री अँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत ॥८४॥

यों रहीम दुख-सुख सहत बड़े लोग सहि साँति।
उवत चन्द्र जेहि भाँति सों अथवत वाही भाँति ॥८५॥

यों रहीम सुख होत है उपकारी के अंग।
बाँटनवारे के लगै ज्यों मेंहदी को रंग ॥८६॥

रहिमन आँटा के लगे बाजत है दिन राति।
घिउ सक्कर जे खात नित तिनकी कहा बिसाति ॥८७॥

रहिमन कठिन चितान ते चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को चिन्ता जीव समेत ॥८८॥

रहिमन छोटे नरन सों होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो नहिं बनै सौ चूहे के चाम ॥८९॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै पसु बिन पूंछ विषान ॥९०॥

रहिमन आंगन पेड़ सों क्यों न भयो तू पीठि।
भूले पान छिपावही और बिगारत दीठि ॥९१॥

रहिमन सूधी चाल सों प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न होइ सकै टेढ़े की तासीर ॥९२॥

रहिमन कबहुँ बड़न के नहीं गर्व को लेस।
भार धरे संसार को तऊ कहावत सेस ॥९३॥

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझैं सब ताहि ॥९४॥

रहिमन जग में निपट कहँ जिनकी बुद्धि गँभीर।
कारज बिन बिन देखियत भँवरु फँसे फकीर ॥९५॥

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥९६॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहै बेर ॥९७॥

बिहारी

जीवन-परिचय

कविवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म अनुमान से सं० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर में हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सं० १७२० में इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराजा जयसिंह के यहाँ रहा करते थे। इनको एक अशर्फी प्रतिदिन मिला करती थी। जयपुर में ही इन्होंने सतसई बनाई, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। एक-एक दोहे में बिहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमें कविता की कल्पना-शक्ति की काफी झलक दिखाई पड़ती है।

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होइ॥१॥

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ स्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग॥२॥

जम-करि-मुँह तरहरि पर्‌यौ इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥३॥

छुकुमु पाइ जयसाहि को हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सँवाद॥४॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि॥५॥

सोहत ओढ़ैं पीतु पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात॥६॥

गोधन तूं हरष्यौ हियैं घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ॥७॥

सामां सेन सयान की सबै साहि कैं साथ।
बाहुबली जयसाहिजू फते तिहारैं हाथ॥८॥

यौं दल काढ़े बलक तैं तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ गुवाल॥९॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार॥१०॥

प्रगट भए द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराइ॥११॥

मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान।
धर्‌यौ मनौ हिय-घर समरु ड्यौढ़ी लसत निसान॥१२॥

मरतु प्यास पिंजरा-पर्‌यौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर॥१३॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥१४॥

कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जातु क्यौं कहि चूहे कैं चाम॥१५॥

रुक्यौ साँकरैं कुंज-मग करतु झाँझि झकुरातु।
मंद मंद मारुत-तुरँगु खूँदतु आवतु जातु॥१६॥

[illegible] [illegible] त्रिकुटी [illegible] धनु मनि मुनिय-माल।
[illegible] [illegible] [illegible] सौं मानु [illegible] लाल॥१७॥

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित अँतर तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥१८॥

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर ॥१९॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौर।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौर ॥२०॥

मोर-चन्द्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति सुनियतु राधामानु ॥२१॥

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाए बौराइ इहिं पाए ही बौराइ ॥२२॥

तजि तीरथ हरि-राधिका तनदुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रजकेलिनिकुँज-मग पग पग होतु प्रयाग ॥२३॥

समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ इहिं कपूत कलिकाल ॥२४॥

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नँदित करी यह दिसि नँद-किसोर ॥२५॥

सँगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥२६॥

बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ ॥२७॥

मनमोहन सौं मोहु करि तूं घनस्यामु निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि गिरधारी उर धारि ॥२८॥

गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेमपयोधि पगारु ॥२९॥

आपनैं आपनैं मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं त्यौं सब कौं सेइबौ एकै नँदकिसोरु ॥३०॥

तौ बलियै भलियै बनी नागर नँदकिसोर।
जौं तुम नीकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर ॥३१॥

चितु दै देखि चकोर त्यौं तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की चुगै कि चँदमयूख ॥३२॥

स्वारथु सुकृतु न श्रमु बृथा देखि बिहँग बिचारि।
बाज पराए पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ॥३३॥

सीसमुकुट कटिकाछनी कर-मुरली उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ बिहारी लाल ॥३४॥

भृकुटीमटकनि पीतपट चटक लटकती चाल।
चलचखचितवनि चोरि चितु लियौ बिहारी लाल ॥३५॥

लखि गौहनि गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिये दावानल की ज्वाल ॥३६॥

प्रलयकरन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपतिगरबु हर्यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥३७॥

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥३८॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंदु ॥३९॥

कहलाने एकत वसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥४०॥

छकि रसालसौरभ सने मधुर माधुरी-गंध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत झौंर झौंर मधु-अंध ॥४१॥

लटुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनीकर तैं छुटैं निगुनीयै ह्वै जाइ ॥४२॥

रनित भृंग घंटावली झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ॥४३॥

चुवति स्वेद मकरंद-कन तरुतरुतर विरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ॥४४॥

पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ।
तरि संसारपयोधि कौं हरिनावैं करि नाउ ॥४५॥

जौ चाहत चटक न घटै मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेहचीकनौ चित्त ॥४६॥

मीत न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥४७॥

नाहिन ए पावक प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीषम लेत उसास ॥४८॥

जाकैं एकाएक हूँ जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥४९॥

नहिं पावसु ऋतुराजु यह तजि तरवर चितभूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौं नव दल फल फूल ॥५०॥

कहौं कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥५१॥

निज करनी सकुचेंहिं कत सकुचावत इहिं चाल।
मोहूँ से नित बिमुख त्यौं सनमुख रहि गोपाल ॥५२॥

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपनैं अपनैं बिरद की दुहूँ निबाहन लाज ॥५३॥

कहै यहै श्रुति सुम्रित्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग ॥५४॥

समै समै सुंदर सबै रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥५५॥

* * *

म ति रा म

जीवन-परिचय

मतिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग और मरण सं० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूँदी के महाराज राव भाऊसिंह के यहाँ रहा करते थे। ये शृङ्गार रस के प्रसिद्ध कवि थे। इनके रचे ललित-ललाम, रसराज, छन्दसार-पिंगल और साहित्य-सार आदि ग्रन्थ हैं।

मो मनतमतोमहिँ हरौ राधा कौ मुख-चँद।
बढ़े जाहि लखि सिंधु लौं नँद - नँदन - आनँद ॥१॥

मँजु गुँज के हार उर मुकुट मोरपरपुँज।
कुँज बिहारी बिहरियै मेरेई मन - कुँज ॥२॥

राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह ॥३॥

तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसँक।
धूरि परी अरबिंद-मुख चँदहि लग्यौ कलँक ॥४॥

मृगपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलच्छन मृदु हास।
मृग-चख जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुबास ॥५॥

कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुँज की माल ॥६॥

गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिं करत बिचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥७॥

सुजस-ओज-सौं साहु-सुत सिवा सुरसिरदार।
सरद चँद आतप कियौ सुचि आतप इक वार ॥१८॥

पिसुन - वचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥१९॥

अति सुढार अति ही बड़े पानिप भरे अनूप।
नाकमुकत नैनानि सौं होड़ परी इहिँ रूप ॥२०॥

ललित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा विसद-रुचि सरद - चांदनी राति ॥२१॥

प्रीति ग्रैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक वँदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥२२॥

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥२३॥

तिहिं पुरान नव-द्वै पढै जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥२४॥

सुखद साधुजन कौं सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जगमायासुकुमार ॥२५॥

मदरसमत्त मिलिंद-गन गान मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कैं सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥२६॥

अँग ललित सित - रंग पट अंग राग अवतँस।
हँस - वाहिनी कीजियै वाहन मेरौ हँस ॥२७॥

सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत है दीनबंधु हर एक ॥३८॥

अधम अजामिल आदि जे हौं तिनकौ हौं राउ।
मोहूं पर कीजै दया कान्ह दया दरियाउ ॥३९॥

अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखैं मोर-पखानि कैं भयो पखान समान ॥४०॥

भौंर भांवरैं भरत हैं कोकिल-कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसात ॥४१॥

कासौं जात बखानि है आंब-कली-रस मित्त।
बिसरायौ जिहिं जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥४२॥

निरखि तरनि-कर-निकर कौ अरु बरनत आलोक।
होत प्रकासित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥४३॥

कपट बचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग मैं संकु ज्यौं होत बिथा की खानि ॥४४॥

पूरत मन की लालसा जगनि जगति गुन-गाथ।
सुर-नर-पल्लव अरुन रुचि भोगनाथ के हाथ ॥४५॥

कलपद्रुम-पल्लव भयौ तू अति दानि निदान।
भोगनाथ नर-नाथ के हाथ-साथ पढ़ि दान ॥४६॥

छोड़ि नेह नँदलाल कौ हम नहिं चाहति जोग।
रंग चालि क्यौं लेत हैं रतन-पारखी लोग ॥४७॥

भोगनाथ नर-नाथ के गुन-गन विमल विसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं पग सेवत महिपाल॥४८॥

अद्भुत गावत जगत सब भोगनाथ गुनगाथ।
भूमिपाल सेवत चरन भिच्छुक सेवत हाथ॥४९॥

निज स्वरूप प्रभु देत हैं सांच कहत मुनि-गोत।
भोगनाथ की रीझ मैं भोगनाथ कवि होत॥५०॥

सरल बान जानै कहा प्रान-हरन की घात।
बँक भयंकर धनुष कौ गुन सिखवत उतपात॥५१॥

होत जगत मैं सुजन कौ दुरजन रोकनहार।
[illegible] कमल गुलाब के कंटक गय परिहार॥५२॥

[illegible] कली गुलाब की [illegible] यहि रूप लखै न।
मनौ [illegible] मधुप कौ दै चुटकी की सैन॥५३॥

करौ कोटि अपराध तुम वाके हियें न रोष।
[illegible] समुद्र मैं बूड़ि जात सब दोष॥५४॥

[illegible] कौ लिखौ दरसनु गोद निदानु।
[illegible] मन-भावते भए भोर के भानु॥५५॥

[illegible] नरनाथ कौ बदन इंदु अरविंदु।
[illegible] मधुर सुधा-मधु-बिंदु॥५६॥

[illegible] सुंदरता मंदमंद।
[illegible] भयौ ज्योतिमय चंद॥५७॥

दिन मैं सुभग सरोज है निसि मैं सुंदर इंदु।
द्यौस राति हूं चारु अति तेरो बदन गोविंदु ॥५८॥

सुनत सदा गुरु-बचन हित रहत बिबुध गन साथ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि-सुरनाथ ॥५९॥

सरनागत-पालक महा दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह पग्यौ रहत रस-बीर ॥६०॥

जगति जगति दोऊ भुजा जग्य रूप कैं रूप।
भोगनाथ नरनाथ की भौंह निहारत भूप ॥६१॥

तुरग अरब पराक के मनि-आभरन अनूप।
भोगनाथ सौं भीख लै भए भिखारी भूप ॥६२॥

भोगनाथ नरनाथ की रीझ्यौ खीझ अनूप।
होत भिखारी भूप है भूप भिखारी-रूप ॥६३॥

मुरलीधर गिरिधरन प्रभु पीतांबर घनस्याम।
बकी-बिदारन कंस-अरि चीर-हरन अभिराम ॥६४॥

पीत झँगुलिया पहिरि कै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं ब्रजबासनि ब्रजनाथ ॥६५॥

तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै यह मन-सुख बरजोर ॥६६॥

मेरी मति मैं राम है कबि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं चित मेरैं आराम ॥६७॥

पानिप में घर मीन को कहत सकल संसार।
दृग-मीननि को देखियत पानिप पारावार ॥६८॥

रोस न करि जौ तजि चल्यौ जानि अँगार गँवार।
छिति-पालनि की माल में तैंहीं लाल सिंगार ॥६९॥

देखैं हूँ बिन देखि हूँ लगी रहै अति आस।
कैसे हूँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास ॥७०॥

तब है रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार के चरन-कमल सुकुमार ॥७१॥

तनु आगें कौं चलतु है मन पाछौ मग लीन।
सलिल सोत में ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन ॥७२॥

* * *

वृन्द

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्धि।
घन तैं ज्यौं तरु बेलि दल फूल फलन की वृद्धि ॥१॥

भाव सरस समझत सबै भले लगैं यह भाय।
जैसे अवसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥२॥

नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात ॥३॥

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय बिचारि।
सब को मन हरषित करै ज्यौं बिवाह में गारि ॥४॥

जो जाको गुन जानहीं सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी लेत ॥५॥

कहा होय उद्यम किए जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल ॥६॥

जाही तैं कछु पाइयै करियै ताकी आस।
रीते सरवर पै गए कैसे बुझत पियास ॥७॥

सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय ॥१८॥

अति हठ मत कर हठ बढ़े बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यौं त्यौं भारी होय ॥१९॥

लालच हू ऐसो भलौ जासौं पूरे आस।
चाटेहू कहुँ ओस के मिटै काहु की प्यास ॥२०॥

जो जेहि भावे सो भलौ गुन को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी पहरति गुंजाहार ॥२१॥

एक भले सब कौ भलौ देखौ सबद विवेक।
जैसे सत हरिचंद के उधरे जीव अनेक ॥२२॥

एक बुरे सब कौं बुरौ होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयौ सब छत्रिन को लोप ॥२३॥

चढ़े न पै जाँचे भलौ जदपि होत अपमान।
गिरत दंत गिर हार तें गज के तऊ बखान ॥२४॥

मान होत है गुननि तें गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखैं सबै काग न राखै कोइ ॥२५॥

आडंबर तजि कीजिये गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ आनो घंट बँधाय ॥२६॥

जैसो गुन दीनो दई तैसो रूप निबंध।
ए दोऊ कहँ पाइये सोनो और सुगंध ॥२७॥

सबही अपनी ठौर पर सोभा लहत विसेष।
चरन महावर ही भली नैनन अंजन-रेख ॥२८॥

कुल बल जैसो होय सो तैसी करिहै बात।
बनिक-पुत्र जानै कहा गढ़ लैबे की घात ॥२९॥

जो सब ही को देत है दाता कहिये सोइ।
जलधर बरसत सम विषम थल न विचारत कोइ ॥३०॥

जो समझै जा बात को सो तिहि कहै विचार।
रोग न जानै ज्योतिषी वैद्य ग्रहन की चार ॥३१॥

सहज मिलै मन मिलत है अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तैं जमत है काँजी तैं फटि जाय ॥३२॥

स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिं।
जैसे पंछी सरस तरु निरस भए उड़ि जाहिं ॥३३॥

सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत।
दिवस गए ज्यों निसि उदित निसगत दिवस उदोत ॥३४॥

पर घर कबहूँ न जाइये गए घटत है जोति।
रबि-मंडल में जात ससि छीन कला छबि होति ॥३५॥

उत्तम जन की होड़ करि नीच न होत रसाल।
कौआ कैसे चल सकै राजहंस की चाल ॥३६॥

या जग की बिपरीति गति समझौ देखि सुठाँव।
कहैं अनादर कृष्ण को हर को शंकर नाँव ॥३७॥

कलुप भाव देखे जहाँ उत्तम जन न रहाँय।
जैसे पावस तजि अनत राजहंस उड़ि जाँय ॥३८॥

जिहि प्रसंग दूपन लगै तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ ॥३९॥

जाके सँग दूपन दुरै करिए तिहिं पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब सुरा अहीरी पानि ॥४०॥

जिहिं देखे लांछन लगै तासों दृष्टि न जोर।
ज्यों कोऊ चितवै नहीं चौथ चंद की ओर ॥४१॥

मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी मैं चूक।
कहा भयो दिन को विभौ देखे जो न उलूक ॥४२॥

दुष्ट न छाँड़े दुष्टता पोखै राखे ओट।
सरपहि केतौ हित करौ चुपै चलावै चोट ॥४३॥

होय बुराई तें बुरौ यह कीनौ निरधार।
खाड खनैगो और कौं ताको कूप तयार ॥४४॥

एक भेप के आसरे जाति बरन छिप जात।
ज्यों हाथी के पाँव में सब को पाँव समात ॥४५॥

जाको जहँ स्वारथ सधै सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी जैसे कारी रात ॥४६॥

पक्षू सहाय न चलि सकै होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहाँ भो कुरुवंस-बिनास ॥४७॥

अति ही सरल न हूजिये देखो ज्यों बनराय।
सीधे सीधे छेदिये बाँको तरु बच जाय ॥४८॥

बहुतन को न विरोधिये निबल जानि बलवान।
मिल भखि जांहि पिपीलिका नागहि नग के मान ॥४९॥

कन कन जोरे मन जुरै खाते निबरै सोय।
बूँद बूँद ज्यों घट भरै टपकत रीतै तोय ॥५०॥

ऊँचे बैठे ना लहैं गुन बिन बड़पन कोइ।
बैठो देवल सिखर पर वायस गरुड़ न होइ ॥५१॥

साँच झूठ निर्नै करै नीतिनिपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै छीर नीर को दोय ॥५२॥

जे पर के पर बढ़ लगात आपनो होय न कोय।
पालै पोषै काग लौं पिकसुत काग न होय ॥५३॥

करौ कीजै किती जतन जातें काज न होय।
परवश है खोदै कुँआ कितौ निकसै तोय ॥५४॥

छोटो छोटो ही भलो जासों गरज सराय।
कीजे कहा पयोधि को जातें प्यास न जाय ॥५५॥

जो चाहै कोई करै बंक असंकित अंग।
ताके देखत नसत हग नरम रीति अभंग ॥५६॥

बंक सरल की चाल तें रीति देत बकसीय।
सुलके बक ह्वै बिंदु ज्यों आक चतुर ईस ॥५७॥

सुधरी विगरै वेग ही विगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै काँजी परै सो फिर दूध बनै न ॥५८॥

सहज रसालौ होय सौं करे अहित पर हेत।
जैसे पीड़ित कीजिये ऊख तऊ रस देत ॥५६॥

कहा करै कोऊ जतन प्रकृति न बदले कोइ।
सानै सदा सनेह मैं जीभ न चिकनी होइ ॥६०॥

जदपि सहोदर होय तऊ प्रकृत और की और।
विष मारे ज्यावै सुधा उपजे एकहि ठौर ॥६१॥

भेष बनावै सूर की कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावे सिंह की स्यार सिंह नहिं होय ॥६२॥

सब तैं लघु है माँगिवौ जा मैं फेर न सार।
बलि पै जाँचत ही भए बावन तन करतार ॥६३॥

बड़े न लोपैं लाज कुल लोपैं नीच अधीर।
उदधि रहै मरयाद मैं बहै उलट नद नीर ॥६४॥

नाम भलो होत न भलो भलौ भाग जिहिं भाल।
लच्छि नाम माँगत फिरै भूली नाम भुवाल ॥६५॥

काम परै ही जानिये जो नर जैसौ होय।
बिन तायै खोटौ खरौ गहनो लखै न कोय ॥६६॥

चतुर सभा मैं कूर नर सोभा पावत नाहिं।
जैसे बक सोभित नहीं हंस-मंडली माहिं ॥६७॥

मारै इक रच्छा करै एकहि कुल को होय।
ज्यौं कृपान अरु कवच ये एक लोह सौं दोय ॥७८॥

अपनी अपनी ठौर पर सबकौं लागै दाव।
जल मैं गाड़ी नाव पर थल गाड़ी पर नाव ॥७९॥

बड़े भार लै निरवहैं तजत न खेद विचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं अब लौं देत न डारि ॥८०॥

सुख दिखाय दुख दीजियै खल सौं लरियै नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ॥८१॥

फिर पीछे पछताइए सो न करै मति सूध।
बदन जीभ हिय जरत है पीवत तातो दूध ॥८२॥

को सुख को दुख देत है देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही धवजा पवन के जोर ॥८३॥

कायर नर को देख रन मुख फीको दरसाय।
काँचो रंग ज्यौं धूप मैं झटक चटक उड़ि जाय ॥८४॥

बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति।
अंबर डंबर साँझ के ज्यौं बारू की भीति ॥८५॥

कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ॥८६॥

बिना सिखाए लेत है जिहि कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहनि को तनय गज पर चढ़त अभीति ॥८७॥

कह्यौ कछु करियौ कछू है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के और दुरद रद होय ॥९८॥

जो कहिये सो कीजिये पहिले करि निरधार।
पानी पी घर पूछनो नाहिन भलौ विचार ॥९९॥

पीछे कारज कीजिये पहिले जतन विचार।
बड़े कहत हैं बांधिये पानी पहिले पार ॥१००॥

झूठ विना फीकी लगै अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलिये ज्यौं आटे में लौन ॥१०१॥

ठौर देखिकै हूजिये कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है बाँबी सूधो साँप ॥१०२॥

आप अकारज आपनो करतु कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने मारतु मूरख हाथ ॥१०३॥

भले भली ही कहत हैं पै न कहत हैं दोप।
सूरदास कहे अंध कौं उपजावत है तोप ॥१०४॥

सदा सुधान प्रधान है बल न प्रधान बताव।
नाग डरावत गरुड़ कौं हर उर हार प्रभाव ॥१०५॥

भले बंस संतति भली कबहूँ नीच न होय।
ज्यौं कंचन की खान में काँच न उपजै कोय ॥१०६॥

करै न कबहूँ साहसी दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौं नाहिं भखै मृगराज ॥१०७॥

छोटे नर सौं बड़ेन कौ कबहूँ बुरा न होय।
तृन आगि करि ना सकै तपत उदधि कौ तोय॥१०८॥

नीचहु उत्तम संग मिलि उत्तम ही है जाय।
गंग संग जल निंद्य हू गंगोदक के भाय॥१०९॥

ऊँचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहूँ तैं ढरि जात॥११०॥

मधुर बचन तैं जात मिट उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सौं मिटै जैसैं दूध उफान॥१११॥

आनि उदारता बड़ेन की कहँ लौं बरनै कोय।
चातक जाँचै तनिक घन बरस भरै घन तोय॥११२॥

औसर बीते जतन कौ करिबौ नहिं अभिराम।
जैसे पानी बह गए सेतबंध किहिं काम॥११३॥

कहुँ कहुँ गुन तैं अधिक उपजत दोष सरीर।
मीठी बानी बोलिकै परत पींजरा कीर॥११४॥

हीन जानि न विरोधिये लघु सौं मन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारिये चढ़ै सीस पर आय॥११५॥

रूप कला निपुनै भला होनहार कौ होय।
चंद कांति मनि के कर में प्रगटै तोय॥११६॥

सन्मुख आदर ना करै पीछे लेत मनाय।
साँपौं सन्मुख न पूजई बाँबी पूजन जाय॥११७॥

देखत को पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति ॥११८॥

द्वै ही गति है वड़नि की कुसुम मालती भाय।
केशव के सिर पर रहै कै वन माहिं विलाय ॥११९॥

खाय न खर्चै सूम धन चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका हाथ मलै पछिताय ॥१२०॥

जैसो जैसो अधिक गुन तैसौ होय मिलाय।
अहिउर विष गल अनल चख शिव ससि सीस बसाय ॥१२१॥

दान दीन कौं दीजियै मिटै दरिद की पीर।
औषध ताकौं दीजियै जाके रोग शरीर ॥१२२॥

सबसौं आगे होय के कबहुँ न करियै बात।
सुधरै काज समान फल बिगरै गारी खात ॥१२३॥

उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
परयौ अपावन ठौर को कंचन तजत न कोय ॥१२४॥

दुष्ट न छांड़ै दुष्टता बड़ी ठौर हू पाय।
जैसैं तजत न श्यामता विष शिव कंठ बसाय ॥१२५॥

कहा करै आगम निगम जो मूरख समझै न।
दरपन को नहिं दोष कछु अँध बदन देखै न ॥१२६॥

नृपति चोर जल अनल तैं धनि कौ भय उपजाय।
जल थल नभ में मांस कौं भख केहरि खग खाय ॥१२७॥

गूढ़ मंत्र गरुवे विना कोऊ राखि सकै न।
धातुपात्र बिन हेम के वाघिन दूध रहै न ॥१३८॥

मूरख कौं हित के वचन सुनि उपजतु है कोप।
साँपहि दूध पिवाइये वाके मुख विष ओप ॥१३९॥

जहाँ सजन तहँ प्रीति है प्रीति तहाँ सुख ठौर।
जहाँ पुष्प तहँ वास है जहाँ वास तहँ भौंर ॥१४०॥

देत न प्रभु कछु बिन दिये दिये देत यह बात।
लै तंदुल धन दुजहि मुनि त्रिपत किए भखि पात ॥१४१॥

यथाशक्ति ही दै सकै जो कछु जाके पास।
ब्राह्मन कन चावर दिए श्रीपति धन आवास ॥१४२॥

जोरावर को होति है सब के सिर पर राह।
हरि रुकमनि हरि लै गयो देखत रहै सिपाह ॥१४३॥

काहू कौं हँसिये नहीं हँसी कलह कौ मूल।
हाँसी ही तें ह्वै गयो कुल कौरव निरमूल ॥१४४॥

जग परतीति बढ़ाइये रहियै साँचे होय।
झूठे नर की साँचिहू साखि न मानै कोय ॥१४५॥

रूखे सूखे उदर कौं भरे होतु संतुष्ट।
ये मन लाख करोरि के पायें तुष्ट न तुष्ट ॥१४६॥

कहे वचन पलटैं नहीं जे सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचंद नृप भरयो नीच घर नीर ॥१४७॥

मति फिर जाय विपत्ति में राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछें गए राम गँवाई सीत॥१४८॥

प्यारी अन प्यारी लगै समै पाय सब बात।
धूप सुहावै शीत में सो ग्रीषम न सुहात॥१४९॥

आप तरै तारै अवर काठ नाव चित चाय।
बूड़ै बोरै अवर कौं ज्यौं पाथर की नाव॥१५०॥

जुआ खेले होतु है सुख संपति कौ नास।
राज-काज नल तें छुट्यौ पांडव किय बनवास॥१५१॥

सरसुति के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै बिन खरचे घटि जात॥१५२॥

देखा देखी करत सब नाहिन तत्त्व विचार।
याकौ यह अनुमान है भेड़ चाल संसार॥१५३॥

चले जु पंथ पिपीलिका समुद्र पार ह्वै जाय।
जौ न चलै तौ गरुड़ हू पैंड़हु चलै न पाय॥१५४॥

भले बुरे हू सौं करत उपकारी उपकार।
तरवर छाया करत है नीच न ऊँच विचार॥१५५॥

करियै सभा सुजानसौं सुख मैं वचन प्रकास।
बिन समझे सिसुपाल के बचनन भयौ बिनास॥१५६॥

बड़न सिरन पर होतु है सबन पाय सब ठौर।
[illegible] ॥१५७॥

बाँके रन तें होतु है वंदनीक सब लोय।
नमत दुतीया चंद कौं पूरन चंद न कोय ॥१५८॥

करिये तहँ पैसार जहँ जो जानिये निसार।
चक्रव्यूह अभिमन्यु कौ सुन्यौ सवनि संसार ॥१५९॥

लोकन के अपवाद को डर करिये दिन-रैन।
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के बैन ॥१६०॥

कहा कहौं विधि की अविधि भूले परम प्रवीन।
मूरख कौं संपति दई पंडित संपति-हीन ॥१६१॥

बड़ी ठौर को लघु लहै आप आदर भाय।
मलयाचल की ज्यौं पवन परसै मंद सुहाय ॥१६२॥

सब ही कुल में होत है एक एक सरदार।
गज ऐरावत सुर सुरिंद तरुवर में मंदार ॥१६३॥

जहाँ सनेही तहँ रहत भ्रमत भ्रमत मन आय।
फिरत कटोरी मंत्र की चोरहि पै ठहराय ॥१६४॥

नीति अनीति बड़े सहैं रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की कीनी हरि मनुहारि ॥१६५॥

रहैं न कबहूँ दोय लखि एक सदन के माहिं।
एक म्यान में द्वै छुरी जैसे मावैं नाहिं ॥१६६॥

परधन लेत छिनाय इक इक धन देत हसंत।
सिसर करतु पतझार तरु गहरे करत वसंत ॥१६७॥

अरि के कर में दीजिये अवसर कौ अधिकार।
ज्यौं ज्यौं द्रव्य लुटाइये त्यौं त्यौं जस विस्तार ॥१६८॥

जहँ उपजै सोई करै जिहिं कुल जो अभ्यास।
छोटे मच्छहु जल तिरैं पंछी उड़ैं अकास ॥१६९॥

कहा बड़े छोटे कहा जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय बिदुर घर दुरजोधन कूं त्यागि ॥१७०॥

* * *

रसनिधि

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
वसतु सुचित अँतर तऊ प्रतिविंवितु जग होइ ॥१८॥

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥१९॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौरु।
विनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥२०॥

मोर-चन्द्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिवी पाइनु पर लुठति सुनियतु राधामानु ॥२१॥

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाए बौराइ इहिं पाए ही बौराइ ॥२२॥

तजि तीरथ हरिराधिका तनदुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रजकेलिनिकुंज-मग पग पग होतु प्रयाग ॥२३॥

समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करौ इहिं कपूत कलिकाल ॥२४॥

नाचि अचानक ही उठे विनु पावस वन मोर।
जानति हौं नँदित करी यह दिसि नँद-किसोर ॥२५॥

सँगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥२६॥

बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ ॥२७॥

लोपै कोपै इँद्र लौं रोपै प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥३८॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दँदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चँदु ॥३९॥

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥४०॥

छकि रसालसौरभ सने मधुर माधुरी-गँध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत भौंर भौंर मधु-अँध ॥४१॥

लड़ुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनीकर तैं छुटैं निगुनीयै ह्वै जाइ ॥४२॥

रनित भृंग घँटावली झरित दान मधु-नीरु।
मँद मँद आवतु चल्यौ कुँजरु कुँज-समीरु ॥४३॥

चुवति स्वेद मकरँद-कन तरुतरुतर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ॥४४॥

पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ।
तरि संसारपयोधि कौं हरिनावैं करि नाउ ॥४५॥

जौ चाहत चटक न घटै मैलो होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेहचीकनौं चित्त ॥४६॥

मीत न नीति गलीतु है जौ धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥४७॥

मतिराम

मो मनतमतोमहिँ हरौ राधा कौ मुख-चँद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नँद - नँदन - आनँद ॥१॥

मँजु गुँज के हार उर मुकुट मोरपरपुँज।
कुँज बिहारी बिहरियै मेरेई मन - कुँज ॥२॥

राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह ॥३॥

तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसँक।
धूरि परी अरविंद-मुख चँदहि लग्यौ कलँक ॥४॥

मृगपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलच्छन मृदु हास।
मृग-चख जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुबास ॥५॥

कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुँज की माल ॥६॥

गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिं करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥७॥

सुजस-ओज-सों साहु-सुत सिवा सूरसिरदार।
सरद चँद आतप कियौ सुचि आतप इक वार ॥१८॥

पिसुन - वचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥१९॥

अति सुढार अति ही बड़े पानिप भरे अनूप।
नाकमुकत नैनानि सौं होड़ परी इहिँ रूप ॥२०।

ललित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा विसद-रुचि सरद - चांदनी राति ॥२१।

प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक बँदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥२२।

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥२३।

तिहिं पुरान नव-द्वै पढै जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान है जात ॥२४॥

सुखद साधुजन कों सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जगमायासुकुमार ॥२५॥

मदरसमत्त मिलिंद-गन गान मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कैं सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥२६॥

अँग ललित सित - रंग पट अंग राग अवतँस।
हँस - बाहिनी कीजियै बाहन मेरौ हँस ॥२७॥

सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत है दीनबंधु हर एक ॥३८॥

अधम अजामिल आदि जे हौं तिनकौ हौं राउ।
मोहूं पर कीजै दया कान्ह दया दरियाउ ॥३९॥

अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखैं मोर-पखानि कैं भयो पखान समान ॥४०॥

भौंर भांवरैं भरत हैं कोकिल-कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसात ॥४१॥

कासौं जात बखानि है आंब-कली-रस मित्त।
बिसरायौ जिहिं जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥४२॥

निरखि तरनि-कर-निकर को अरु बरनत आलोक।
होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥४३॥

कपट बचन अपराध तें निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग में संकु ज्यौं होत बिथा की खानि ॥४४॥

पूरत मन की लालसा जगनि जगति गुन-गाथ।
सुर-नर-पल्लव अरुन रुचि भोगनाथ के हाथ ॥४५॥

कलपद्रुम-पल्लव भयौ तू अति दानि निदान।
भोगनाथ नर-नाथ के हाथ-साथ पढ़ि दान ॥४६॥

छोड़ि नेह नँदलाल कौ हम नहिं चाहति जोग।
रंग घाति क्यौं लेत हैं रतन-पारखी लोग ॥४७॥

दिन मैं सुभग सरोज हैं निसि मैं सुँदर इंदु।
द्यौस राति हूं चारु अति तेरो बदन गोविंदु ॥५८॥

सुनत सदा गुरु-बचन हित रहत बिबुध गन साथ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि-सुरनाथ ॥५९॥

सरनागत-पालक महा दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह पर्यौ रहत रस-बीर ॥६०॥

जगति जगति दोऊ भुजा जग्य रूप कैं रूप।
भोगनाथ नरनाथ की भौंह निहारत भूप ॥६१॥

तुरग अरव पराक के मनि-आभरन अनूप।
भोगनाथ सौं भीख लै भए भिखारी भूप ॥६२॥

भोगनाथ नरनाथ की रीझ्यौ रीझ अनूप।
होत भिखारी भूप हैं भूप भिखारी-रूप ॥६३॥

मुरलीधर गिरिधरन प्रभु पीतांबर घनस्याम।
बकी-बिदारन कँस-अरि चीर-हरन अभिराम ॥६४॥

पीत झँगुलिया पहिरि कै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं ब्रजबासनि ब्रजनाथ ॥६५॥

तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै यह मन-सुख बरजोर ॥६६॥

मेरी मति मैं राम हैं कवि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं चित मेरे आराम ॥६७॥

वृन्द

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्धि।
घन तैं ज्यौं तरु बेलि दल फूल फलन की वृद्धि ॥१॥

भाव सरस समझत सबै भले लगैं यह भाय।
जैसे अवसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥२॥

नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मैं रस सिंगार न सुहात ॥३॥

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि।
सब को मन हरषित करै ज्यौं विवाह मैं गारि ॥४॥

जो जाको गुन जानहीं सो तिहि आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी लेत ॥५॥

कहा होय उद्यम किए जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल ॥६॥

जाही तें कछु पाइये करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गए कैसे बुझत पियास ॥७॥

सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय ॥१८॥

अति हठ मत कर हठ बढ़े बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यौं त्यौं भारी होय ॥१९॥

लालच हू ऐसौ भलौ जासौं पूरे आस।
चाटेहू कहुँ ओस के मिटै काहु की प्यास ॥२०॥

जो जेहि भावे सो भलौ गुन को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी पहरति गुंजाहार ॥२१॥

एक भले सब कौ भलौ देखौ सबद विवेक।
जैसे सत हरिचंद के उधरे जीव अनेक ॥२२॥

एक बुरे सब कौ बुरौ होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयौ सब छत्रिन को लोप ॥२३॥

बड़ेन पैं जाँचे भलौ जदपि होत अपमान।
गिरत दंत गिर हार तैं गज के तऊ बखान ॥२४॥

मान होत है गुननि तैं गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखैं सबै काग न राखै कोइ ॥२५॥

आडंबर तजि कीजियै गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ आनो घंट बँधाय ॥२६॥

जैसौ गुन दीनौ दई तैसौ रूप निबंध।
ए दोऊ कहँ पाइये सोनौ और सुगंध ॥२७॥

कलुष भाव देखै जहाँ उत्तम जन न रहाँय।
जैसैं पावस तजि अनत राजहंस उड़ि जाँय ॥३८॥

जिहिं प्रसंग दूषन लगै तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ ॥३९॥

जाके सँग दूषन दुरै करिए तिहिं पहिचानि।
जैसैं समझैं दूध सब सुरा अहीरी पानि ॥४०॥

जिहिं देखै लांछन लगै तासौं दृष्टि न जोर।
ज्यौं कोऊ चितवै नहीं चौथ चंद की ओर ॥४१॥

मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी मैं चूक।
कहा भयो दिन को विभौ देखै जो न उलूक ॥४२॥

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता पोखै राखै ओट।
सरपहि केतौ हित करौ चुपै चलावै चोट ॥४३॥

होय बुराई तैं बुरौ यह कीनौ निरधार।
खाड खनैगो और कौं ताकौ कूप तयार ॥४४॥

एक भेष के आसरे जाति बरन छिप जात।
ज्यौं हाथी के पाँव मैं सब को पाँव समात ॥४५॥

जाको जहँ स्वारथ सधै सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी जैसै कारी रात ॥४६॥

काहू सहाय न चलि सकै होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहाँ भो कुरुबंस-बिनास ॥४७॥

सुधरी बिगरै बेग ही बिगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै काँजी परै सो फिर दूध बनै न ॥५८॥

सहज रसालौ होय सौं करे अहित पर हेत।
जैसै पीड़ित कीजिये ऊख तऊ रस देत ॥५९॥

कहा करै कोऊ जतन प्रकृति न बदलै कोइ।
सानै सदा सनेह मैं जीभ न चिकनी होइ ॥६०॥

जदपि सहोदर होय तऊ प्रकृत और की और।
विष मारै ज्यावै सुधा उपजै एकहि ठौर ॥६१॥

भेष बनावै सूर कौ कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावै सिंह की स्यार सिंह नहिं होय ॥६२॥

सब तें लघु है माँगिवौ जा मैं फेर न सार।
बलि पै जाँचत ही भए बावन तन करतार ॥६३॥

बड़े न लोपैं लाज कुल लोपैं नीच अधीर।
उदधि रहै मरयाद मैं बहै उलट नद नीर ॥६४॥

नाम भलौ होत न भलौ भलौ भाग जिहिं भाल।
लच्छि नाम माँगत फिरै भूखौ नाम भुवाल ॥६५॥

काम परै ही जानिये जो नर जैसौ होय।
बिन तायै खोटौ खरौ गहनो लखै न कोय ॥६६॥

चतुर सभा मैं कूर नर सोभा पावत नाहिं।
जैसैं बक सोभित नहीं हंस-मंडली माहिं ॥६७॥

मारै इक रच्छा करै एकहि कुल को होय।
ज्यों कृपान अरु कवच ये एक लोह सों होय ॥७८॥

अपनी अपनी ठौर पर सबकौं लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर थल गाड़ी पर नाव ॥७९॥

बड़े भार लै निरवहैं तजत न खेद विचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं अब लौं देत न डारि ॥८०॥

सुख दिखाय दुख दीजियै खल सों लरियै नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ॥८१॥

फिर पीछे पछताइए सो न करै मति सूध।
वदन जीभ हिय जरत है पीवत तातो दूध ॥८२॥

को सुख को दुख देत है देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवन के जोर ॥८३॥

कायर नर को देख रन मुख फीको दरसाय।
काँचो रंग ज्यों धूप में झटक चटक उड़ि जाय ॥८४॥

विनसत वार न लागई ओछे जन की प्रीति।
अंबर डंबर साँझ के ज्यों वारू की भीति ॥८५॥

कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार विरवान के होत चीकने पात ॥८६॥

बिना सिखाए लेत है जिहि कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहनि का तनय गज पर चढ़त अभीति ॥८७॥

कहवौ कछु करिवौ कछू है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के और दुरद रद होय ॥९८॥

जो कहिये सो कीजिये पहिलै करि निरधार।
पानी पी घर पूछनो नाहिन भलौ विचार ॥९९॥

पीछे कारज कीजिये पहिलै जतन विचार।
वड़े कहत हैं बांधियै पानी पहिलै वार ॥१००॥

झूठ विना फीकी लगे अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही वोलिये ज्यौं आटे में लौन ॥१०१॥

ठौर देखिके हूजिये कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है बाँवी सूधो साँप ॥१०२॥

आप अकारज आपनौ करतु कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने मारतु मूरख हाथ ॥१०३॥

भले भली ही कहत हैं पै न कहत हैं वोप।
सूरदास कहे अंध कौं उपजावत है तोप ॥१०४॥

सदा सुथान प्रधान है वल न प्रधान बताव।
नाग डरावत गरुड़ कौं हर उर हार प्रभाव ॥१०५॥

भले वंस संतति भली कबहूँ नीच न होय।
ज्यौं कंचन की खान में काँच न उपजै कोय ॥१०६॥

करै न कबहूँ साहसी दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौं नाहिं भखै मृगराज ॥१०७॥

देखत कौ पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति॥११८॥

द्वै ही गति है बड़नि की कुसुम मालती भाय।
केशव के सिर पर रहै कै बन माहिं बिलाय॥११९॥

खाय न खर्चै सूम धन चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमच्छिका हाथ मलै पछिताय॥१२०॥

जैसौ जैसौ अधिक गुन तैसौ होय मिलाय।
अहिउर विष गल गरल चख शिव ससि सीस बसाय॥१२१॥

दान दीन कौं दीजियै मिटै दरिद की पीर।
औषध ताकौं दीजियै जाके रोग शरीर॥१२२॥

सबसौं आगे होय के कबहुँ न करियै बात।
सुधरै काज समान फल बिगरै गारी खात॥१२३॥

उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
परयौ अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय॥१२४॥

दुष्ट न छांड़ै दुष्टता बड़ी ठौर हू पाय।
जैसैं तजत न श्यामता विष शिव कंठ बसाय॥१२५॥

कहा करै आगम निगम जो मूरख समझै न।
दरपन कौ नहिं दोष कछु अँध बदन देखै न॥१२६॥

नृपति चोर जल अनल तैं धनि कौ भय उपजाय।
थल नभ में मांस कौं भख केहरि खग खाय॥१२७॥

गूढ़ मंत्र गरुवे बिना कोऊ राखि सकै न।
धातुपात्र बिन हेम के बाघिन दूध रहै न ॥१३८॥

मूरख कों हित के वचन सुनि उपजतु है कोप।
साँपहि दूध पियाइये वाके मुख विष ओप ॥१३९॥

जहाँ सजन तहँ प्रीति है प्रीति तहाँ सुख ठौर।
जहाँ पुष्प तहँ बास है जहाँ बास तहँ भौंर ॥१४०॥

देत न प्रभु कछु बिन दियें दियें देत यह बात।
ले तंदुल धन दुजहि मुनि त्रिपत किए भखि पात ॥१४१॥

यथाशक्ति ही दै सकै जो कुछु जाके पास।
ब्राह्मन कन चावर दिए श्रीपति धन आवास ॥१४२॥

जोरावर को होति है सब के सिर पर राह।
हरि रुकमनि हरि ले गयो देखत रहे सिपाह ॥१४३॥

काहू कों हँसिये नहीं हँसी कलह को मूल।
हाँसी ही तें है गयो कुल कौरव निरमूल ॥१४४॥

जग परतीति बढ़ाइये रहिये साँचे होय।
झूठे नर की साँचिहू साखि न मानै कोय ॥१४५॥

रूखे सूखे उदर कों भरे होतु संतुष्ट।
ये मन लाख करोरि के पायें तुष्ट न दुष्ट ॥१४६॥

कहे बचन पलटैं नहीं जे सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचंद नृप भरयो नीच घर नीर ॥१४७॥

रसनिधि

अरि के कर में दीजिये अवसर को अधिकार।
ज्यों ज्यों द्रव्य लुटाइये त्यों त्यों जस विस्तार ॥१६८॥

जहँ उपजै सोई करै जिहि कुल जो अभ्यास।
छोटे मच्छहु जल तिरैं पंछी उड़ैं अकास ॥१६९॥

कहा बड़ो छोटो कहा जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय बिदुर घर दुरजोधन कूँ त्यागि ॥१७०॥

रसनिधि

लसत सरस सिंधुर-बदन भालथली नखतेस।
विघनहरन मंगलकरन गौरीतनय गनेस ॥१॥

नमो प्रेमपरमारथी इह जाचत हौं तोहि।
नंदलाल के चरन कौं दे मिलाइ किन मोहि ॥२॥

निसि दिन गुंजत रहत जे बिरद गरीबनेवाज।
है निज मधुकर-सुतन की कमलनैन तुहि लाज ॥३॥

अब तौ प्रभु तारैं बनै नातर होत कुतार।
तुमहीं तारन-तरन हौ सो मोरे आधार ॥४॥

अद्भुत गति यह रसिकनिधि सरस प्रीत की बात।
आवत ही मन साँवरो उर कौ तिमिर नसात ॥५॥

कैइक स्वाँग बनाइकै नाचौ बहु बिधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह बिना हिए के साँच ॥६॥

जाकी गति चाहत दियो लेत अगति तें राखि।
रसनिधि है या बात के भक्त भागवत साखि ॥७॥

जिन वारे नँदलाल पै अपने मन धन ल्याइ।
उनके वारे की कछू मोपै कही न जाइ ॥१८॥

हरि-पूजा हरि-भजन मैं सो ही ततपर होत।
हरि उर जाही आइकै हरवर करै उदोत ॥१९॥

रसनिधि मन मधुकर रमहिं जो चरनांबुज माहिं।
सरस अनखुलौ खुलत है खुलौ खुलौई नाहिं ॥२०॥

रूप द्दगन श्रवनन सुजस रसना मैं हरिनाम।
रसनिधि मन मैं नित बसै चरन कमल अभिराम ॥२१॥

कपटी जब लौं कपट नहिं साँच विगुरदा धार।
तब लौं कैसे मिलैगौ प्रभु साँचौ रिझवार ॥२२॥

नेत नेत कहि निगम पुनि जाहि सकै नहिं जान।
भयौ मनोहर आइ ब्रज वही सो हरि हर आन ॥२३॥

परम दया करि दास पै गुरू करी जब गौर।
रसनिधि मोहन भावतौ दरसायौ सब ठौर ॥२४॥

पाप पुन्य अरु जोति तैं रवि ससि न्यारे जान।
जदपि सो सब घटन मैं प्रतिबिंबित है आन ॥२५॥

आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुबास।
लेत आपुही बासना आपु लसत सब पास ॥२६॥

पवन तुहीं पानी तुहीं तुहीं धरनि आकास।
तेज तुहीं पुनि जीव है तुहीं लियौ तन बास ॥२७॥

पंचन पंच मिलाइके जीव ब्रह्म मैं लीन।
जीवनमुक्त कहावही रसनिधि वह परवीन ॥३८॥

कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यौं पाहन मैं आग ॥३९॥

अलख सबेई लखत वह लख्यौ न काहू जाय।
दृग तारनि के तिलक की झांकि न झांकी जाइ ॥४०॥

गरजन मैं पुनि आपु ही बरसन मैं पुनि आपु।
सुरझन मैं पुनि आपु त्यौं उरझन मैं पुनि आपु ॥४१॥

कहुँ गावै नाचै कहूँ कहूँ देत है तार।
कहूँ तमासा देखही आपु बैठ रिझवार ॥४२॥

नर पसु कीट पतंग मैं थावर जंगम मेल।
ओट लिये खेलत रहै नयौ खिलारी खेल ॥४३॥

हिंदू मैं क्या और है मुसलमान मैं और।
साहिब सब का एक है व्याप रहा सब ठौर ॥४४॥

कहुँ नाचत गावत कहूँ कहूँ बजावत बीन।
सब मैं राजत आपु ही सब ही कला प्रवीन ॥४५॥

जल समान माया लहर रवि समान प्रभु एक।
लहि वाके प्रतिबिंब कौं नाचत भाँति अनेक ॥४६॥

जाई को बीसौ दिसा ताहू मैं पुनि व्याइ।
प्रभु बिन खाली ठौर कहुँ इतनौहूं न दिखाइ ॥४

अलख जात इन दृगनि सौं विदित न देखी जाइ।
प्रेम कांति वाकी प्रगट सब ही ठौर दिखाइ ॥४८॥

जदपि रह्यौ है भावतौ सकल जगत भरपूर।
बल जैयै वा ठौर की जहँ है करै जहूर ॥४९॥

पंच तत्त्व की देह मैं त्यों सुर व्यापक होइ।
विस्वरूप मैं ब्रह्म ज्यौं व्यापक जानौ सोइ ॥५०॥

रस ही मैं औ रसिक मैं आपुहि कियौ उदोत।
स्वाति-बूँद मैं आप ही आपहि मानिक होत ॥५१॥

करत फिरत मन बावरे आप नहीं पहिचान।
तो ही मैं परमातमा तेत नहीं पहिचान ॥५२॥

तूं सज्जन या बात कौं समुझ देख मन माहिं।
अरे दया मैं जो मजा सो गुलशन मैं नाहिं ॥५३॥

सज्जन हो या बात को करि देखो निज गौर।
बोलन चितवन चलन यह दरदवंत की और ॥५४॥

मीता तूं या बात कौं हिए गौर करि हेर।
दरदवंत बेदरद कौं निसि बासर कौ फेर ॥५५॥

सज्जन पास न कहु अरे ये अनसमझी बात।
मोम-रदन कहुँ लोह के चना चबाए जात ॥५६॥

जब देखौ तब सजन मैं सज्जनताई सौहि।
जारै जारै अगर ज्यों तजत नहीं खुसबोहि ॥५७॥

लखि बड़वार सुजातिया अनख धरै मन नाहिं।
बड़े नैन लखि अपुन पै नैना सही सिहाहिं ॥७८॥

प्यास सहत पी सकत नहिं औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी गज ही के गर आन ॥७९॥

औघट घाट पखेरुवा पीवत निरमल नीर।
गज गरुवाई तैं फिरै प्यासे सागर तीर ॥८०॥

धरि सौने कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है विष ही मैं सुख पाइ ॥८१॥

बैठत इक पग ध्यान धरि मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारे हो गए रसनिधि याही हेत ॥८२॥

अमित अथाहे हो भरे जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जो न तुम आए प्यासन काम ॥८३॥

गुल गुलाब अरु कमल कौ रस लीन्हौं इक ताक।
अब जीवन चाहत मधुप बैस अकेलौ आक ॥८४॥

काग आपनी चतुरई तब तक लेहु चलाइ।
जब लग सिर पर देइ नहिं लगर सचूना आइ ॥८५॥

चल न सकै निज ठौर तैं जे तरु द्रुम अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिबौ लाजिम तुहि घनस्याम ॥८६॥

तेरी है या साहिबी वार पार सब ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै तुही प्रभू कर गौर ॥८७॥

विक्रम

विक्रम

कूल कलिंदी नीप तर सोहत अति अभिराम।
यह छवि मेरे मन बसो निसि दिन स्यामा स्याम ॥१॥

राधापति हिय में धरौं राधापति मुख बैन।
राधापति नैनन लहौं राधापति सुख दैन ॥२॥

मनमोहन मन में बसौ हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैननि बसौ मुरलीधर मुख माहि ॥३॥

है प्रचंड अति पौन तें रुकत नहीं मन मंद।
जौ लौं नाहीं कृपा कर बरजत हैं ब्रजचंद ॥४॥

आधि अगाधा व्याधि हरि हरि-राधा जप सोइ।
साधि समाधा सिव कह्यौ बाधा-बाधक होइ ॥५॥

वृंदावन राजैं दुवौ साजैं सुख के साज।
महरानी राधा उतै महाराज ब्रजराज ॥६॥

बिहरत वृंदा-बिपिन में गोपिन संग गोपाल।
बिकसि हिये सदा बसौ हरि छवि सौं नंदलाल ॥

मेरी दीरघ दीनता दयासिंधु दिल देव।
प्रभु गुन-आला जानिकैं बालापन तैं सेव ॥१८॥

प्रनत-पाल-बिरदावली राखी आनि जहान।
अब मम बार अबार कत कीजत कृपानिधान ॥१९॥

कै तुव कान परी नहीं दीनबंधु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज लगी न एती देर ॥२०॥

दीनबंधु है दीन को जो तुम नहिँ सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि दीनबंधु केहि हेत ॥२१॥

निज सुभाय छोड़त नहीं कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव हौं अधमन-सिरमौर ॥२२॥

तरौ तेरौ हौं कहत दूजो नहीं सहाइ।
कहिबौ बिरद सम्हार अब बिक्रम मेरो आदि ॥२३॥

हौं चेरौ ब्रजराज कौ जानत सकल जहान।
मेरी कहत न चूकवी अधम-उधारन-बान ॥२४॥

दीनबंधु तुम दीन हौं यह नातो उर लेख।
हे कृपाल सुन लीजिए बिक्रम बिनय बिशेष ॥२५॥

भूलि तजत हौं भूल नहिं यहै भूलि की देस।
तुम जनि भूलौ नाथ मम राखहु सुरत हमेस ॥२६॥

भू भारे तारे पतित नानि हारे स्रुति सेष।
हिय हारे कत जात अब तिहि गिनती मुहि लेख ॥२७॥

दामिनि दमक दिसानि मैं देखि दगन दुख देति।
उमड़ि घुमड़ि हठि करि हियौ जलद जलद हरि लेति ॥३८॥

झीने भार झुकि झुकि झमकि झलनि झांपि झकझोर।
झुमड़ घुमड़ बरसत सघन उमड़ि घुमड़ि घन घोर ॥३९॥

लहराती लतिकांत नित छहराती छित छोर।
छहराती कारी घटा रँगराती बन मोर ॥४०॥

रहे झुमड़ि घन गगन घन भौ तन तोम विसेस।
निसि बासर समुझ न परत प्रफुलित पंकज पेख ॥४१॥

मनभावन आवन भवन सुख सरसावन काज।
सावन बरसावन सुखनि समय सुहावन आज ॥४२॥

कुंभकरन कौ देखि कपि नासा-करन-विहीन ।
अट्टहास करि भू झुके मन भौ मोद अधीन ॥४३॥

मारतंड परचंड महँ फरकत जुग भुजदंड।
रघुनंदन दसकंध लखि टंकोरयो कोदंड ॥४४॥

घाटौ अवनि अकास सर छाटौ झुलन जाल।
काटौ दस दसकंध के मुंड आज विकराल ॥४५॥

हनूमान बहु गिरि लिए गरजत प्रभु कौ घेर।
लगी दगन मैं टकटकी रहे रिच्छ कपि हेर ॥४६॥

भूमि भूधराकार लखि उद्धत युद्ध कराल।
कंपे रिच्छ लखि लच्छ कपि कुंभकरन जनु काल ॥४७॥

सघन बनै उडुगनि गगनि अनगित करत उदोत।
परम प्रकाशक पै निसा निसानाथ तैं होत ॥५८॥

पंकज के धोखे मधुप कियौ केतकी संग।
अंध भयौ कंटक बिधौ भयौ मनोरथ भंग ॥५९॥

परमारथ साधत सदा अवराधत गुन एक।
ते बिरले जग देखिए कहुँ हजार मैं एक ॥६०॥

बिटप तिहारे पुहुप हम सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढ़न पै रावरे कहाइ ॥६१॥

श्रीफल दाख अँगूर अति नूत तूत फल भूर।
तजिकै सुक सेमर गयौ भई आस चकचूर ॥६२॥

केसर पूर कपूर सौ अगर धूर करपूर।
अति रस मोद समोदकै तजै प्याज नहिं नूर ॥६३॥

पतिव्रत लौं व्रत करत है भाषत अनृत न लेस।
सील छमा छिति लौं करै दिल लौं रहै हमेस ॥६४॥

सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक-पति इष्ट।
बिगत असूया सील सै ज्यौं अनसूया सृष्ट ॥६५॥

सुचि सुगंध सोभा सरस राजत अमल अमंद।
लखि गुलाब के फूल तैं झरत मधुर मकरंद ॥६६॥

अरुन नील पियरे लसत अंकन सुमन समाज।
अरी आज रितुराज की धनक बनै ब्रजराज ॥६७॥

कुछ अन्य कवियों के दोहे

झाली तुट्टी किं न मुउ किं न हुयउ छर पुंज।
हिंडइ दोरी बँधीयउ जिम मंकड़ तिम मुंज ॥१॥

मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयुं न झूरि।
जइ सक्कर सय खंड थिय तो इस मीठी चूरि ॥२॥

जा मति पच्छइ सम्पजइ सा मति पहली होइ।
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढ़इ कोइ ॥३॥

बाह विछोवङी जाहि तुहुँ हउँ तेवइँ का दोसु।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि जाणउँ मुंज सरोसु ॥४॥

एउ जम्मु नग्गुहं गिउ भड़सिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खाँ तुरियँ न माणियाँ गोरी गली न लग्गु ॥५॥

—मुंज

मन की दुविधा ना मिटै मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले नानका जन्म चल्या नर लोइ ॥६॥

—गुरु नानक

* * *

(सुनि परमित पिय प्रेम की चातक चितवत पारि।
घन आशा सब दुख सहै अंत न याँचै वारि ॥१॥

देखो करनी कमल की कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो सूख्यो सरहिं समेत ॥२॥

दीपक पीर न जानई पावक परत पतंग।
तनु तो तिहि ज्वालाजरयो चित न भयो रस भंग ॥३॥

मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि रति न घटै तन जात ॥४॥

सदा संघाती आपनो जिय को जीवन प्रान।
सो तू विसरयो सहज ही हरि ईश्वर भगवान ॥५॥

खग मृग मीन पतंग लौं मैं सोधे सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते कहाँ कहाँ लगि और ॥६॥

प्रभु पूरन पावन सखा प्राणनि को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु जीवन जाके हाथ ॥७॥

मोहन जन ब्रजभूमि सब मोहन सहज समाज।
मोहन जमुना-कुंज तहँ विहरत श्रीब्रजराज ॥१॥

सेव्य हमारे हैं सदा वृन्दाविपन-विलासि ।
नँद-नंदन वृषभानुजा चरन—अनन्य-उपासि ॥२॥

आन कहै आनै न उर हरि गुरु सों रति होय।
सुखनिधि स्यामा-स्याम के पद पावै भल सोय ॥३॥

जन्म जन्म जिनके सदा हम चाकर निस भोर।
त्रिभुवन-पोषन सुधाकर ठाकुर जुगलकिसोर ॥४॥

तनिक न धीरज धरि सकै सुनि धुनि होत अधीन।
बंसी बंसीलाल की बंधन कौं मन-मीन ॥५॥

मेरे मन की अघटना के तुम जाननि हार।
बलि राधे नंद-नन्दना चरन दिखाये चारु ॥६॥

ढारौं निज कर चमर लै धारौं नैननि नेह।
सोवत युगलकिसोर जहँ सेऊँ चरन सु देह ॥७॥

अङ्ग-अङ्ग-दुति माधुरी विवि मुख चन्द्रचकोर।
अटके श्रीभट-दृष्टि मैं नटवर नवल किसोर ॥८॥

—श्रीभट

अपने अपने मत लगे वादि मचावत सोर।
ज्यों त्यों सबको सेइयो एकै नन्द-किसोर ॥११॥

—हरिराम व्यास

* * *

सेवा अरु तीरथ-भ्रमन फल तेहि कालहि पाइ।
भक्तन सँग छिन एक में सबै भक्ति उपजाइ ॥१॥

जिनके हिय में बसत हैं राधावल्लभ लाल।
तिनकी पद-रज लेइ ध्रुव पियत रहौ सब काल ॥२॥

जिनके जाने जानिए जुगुल चंद सुकुमार।
तिनकी पद-रज सीस धरि ध्रुव के यहै अधार ॥३॥

सफल वयस सतकर्म में जो पै वितई होइ।
भक्तन को अपराध इक डारत सब कों खोइ ॥४॥

और सकल अघ-मुचन कों नाम उपायहि नीक।
भक्त-द्रोह को जतन नहि होत बज्र की लीक ॥५॥

निंदा भक्तनि की करैं सुनत जौन अघरासि।
वे तो एकै संग दोउ बँधत भानुसुत-पासि ॥६॥

भूलिहुँ मन दीजै नहीं भक्तन-निन्दा ओर।
होत अधिक अपराध निहि माति जानहु उर मोर ॥७॥

मिसरी माँहैं मेल करि मोल बिकाना बंस।
यों दादू महँगा भया पारब्रह्म मिलि हंस ॥६॥

केते पारखि पचि मुये कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं गूँगे का गुड़ खाइ ॥७॥

जब मन लागै राम सौं तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों ऐसे रहै समाइ ॥८॥

काया कठिन कमान है खींचै विरला कोइ।
मारे पाँचौ मिरगला दादू सूरा सोइ ॥९॥

जिहि घर निंदा साधु की सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये नाँव न ठाँव न धूल ॥१०॥

—दादू

* * *

दुए भिन्न सब एक हैं ज्यों कंचन त्यौं काँच।
पल्टू ऐसे दास को सपने लगै न आँच ॥१॥

खोजत खोजत मरि गये तीरथ बेद पुरान।
पल्टू सूझत है नहीं भेस में है भगवान ॥२॥

सुन लो पल्टू भेद यह हँसि बोलो भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है सुख में नरक निदान ॥३॥

प्रभुता ही को सब मरै प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै प्रभुता दासी होय ॥७॥

—मलूकदास

* * *

वैद्य हमारे राम जी औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब सुमिरण आठौ जाम ॥१॥
सुन्दर संसय को नहीं बड़ो महुच्छव पेह।
आतम परमातम मिलो रहो कि बिनसो देह ॥२॥
सुन्दर जो गाफिल हुआ तौ वह साँई दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ तौ हाजराँ हजूर ॥३॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥४॥
लौन पूतरी उदधि में थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचही गई बिलाइ ॥५॥

—सुंदरदास

* * *

प्रभुता ही को सब मरै प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै प्रभुता दासी होय ॥७॥

—मलूकदास

* * *

वैद्य हमारे राम जी औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब सुमिरण आठौ जाम ॥१॥
सुन्दर संसय को नहीं बड़ो महुच्छव येह।
आतम परमातम मिले रहो कि विनसो देह ॥२॥
सुन्दर जो गाफिल हुआ तौ वह साँई दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ तौ हाजराँ हजूर ॥३॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यौं कुटुम्ब सब जानि ॥४॥
लौन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचही गई बिलाइ ॥५॥

—सुंदरदास

पिक केकी कोकिल कुहुक चंदर चृंद अपार।
ऐसे तरु लखि निकट, कब मिलिहौं बाँह पसार ॥३॥

जमुना-तट निसि चाँदनी सुभग पुलिन में जाय।
कब एकाकी होयहौं मौन पवन उर चाय ॥४॥

सिर झलकत मंजुल मुकुट कटि लौं लट रहि छूटि।
सोहति ललित लिलाट पै उभै भौंह की जूटि ॥५॥

कुंडल-झलक कपोल पर राजति नाना भांति।
कब इन नैननि देखिहौं वदन-चंद की कांति ॥६॥

ता दिन हीं तें छूटिहै खान-पान अरु सैन।
छीन देह, जीरन बसन फिरिहौं हिये न चैन ॥७॥

चरन छिदत काँटेन तें स्रवत रुधिर सुधि नाहिं।
पूँछत हौं फिरिहौं भट्ट खग मृग तरु बन माहिं ॥८॥

कबै मनोरथ सिद्ध ये ह्वैहैं मेरे लाल।
सतसंगति तें दूर नहिं जानैं रसिक रसाल ॥९॥

जो बाँचे सीखै सुनै रीझि करै फिरि प्रस्न।
सो सतसंगति कीजियो पहुँचै जय श्रीकृस्न ॥१०॥

—नागरीदास

कब हौं सेवा-कुंज में ह्वैहौं स्याम तमाल।
लतिका कर गहि विरमिहैं ललित लड़ैतीलाल॥२॥
सुमन-वाटिका-विपिन में ह्वैहौं कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते धरिहैं बीनि दुकूल॥३॥
कब कालीदह-कूल की ह्वैहौं त्रिविधि समीर।
जुगुल-अंग-अँग लागिहौं उड़िहै नूतन चीर॥४॥
मिलिहैं कब अँग छार ह्वै श्रीवन वीथिन धूरि।
परिहै पद-पंकज जुगुल मेरी जीवन-मूरि॥५॥

—ललितकिशोरी

* * *

मूषकवाहन गजवदन एकरदन मुदमूल।
वंदहुँ गणनायक चरण शरण सदा सुखमूल॥१॥
राजा सन्मुख तनु तजै करै स्वर्ग को भोग।
दुनियां में यश विस्तरै हँसें न जग के लोग॥२॥
सहसा कछु नहिं कीजिये कीजै सबै विचारि।
सहसा करै जो घटि परै अरु आवै जग गारि॥३॥
जदपि सुजाति सुलच्छनी सरस सुवरण सुवृत्त।
भूषन बिन न बिराजई बनिता कविता मित्त॥४॥

सिव सरजा तव दान को करि को सकत बखान।
बढ़त नदीगन दान-जल उमड़त नद गज-दान ॥८॥

साहिन सों रन माँडिबो कीबो सुकवि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल है औरन को जंजाल ॥९॥

तुही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी जानत सकल जहान ॥१०॥

साहितने सिवराज की सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै अनखीझे अरि सैन ॥११॥

अचरज भूषन मन बढ्यो श्री सिवराज खुमान।
तव कृपान धुव धूम तें भयो प्रताप कृसान ॥१२॥

महाराज सिवराज तव वैरी तजि रस रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे बूड़े सोक समुद्र ॥१३॥

सिव सरजा तव हाथ को नहिं बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब त्रिभुवन मैं न समात ॥१४॥

सुजस दान अरु दान धन धन उपजै किरवान।
सो जग मैं जाहिर करी सरजा सिवा खुमान ॥१५॥

—भूषण
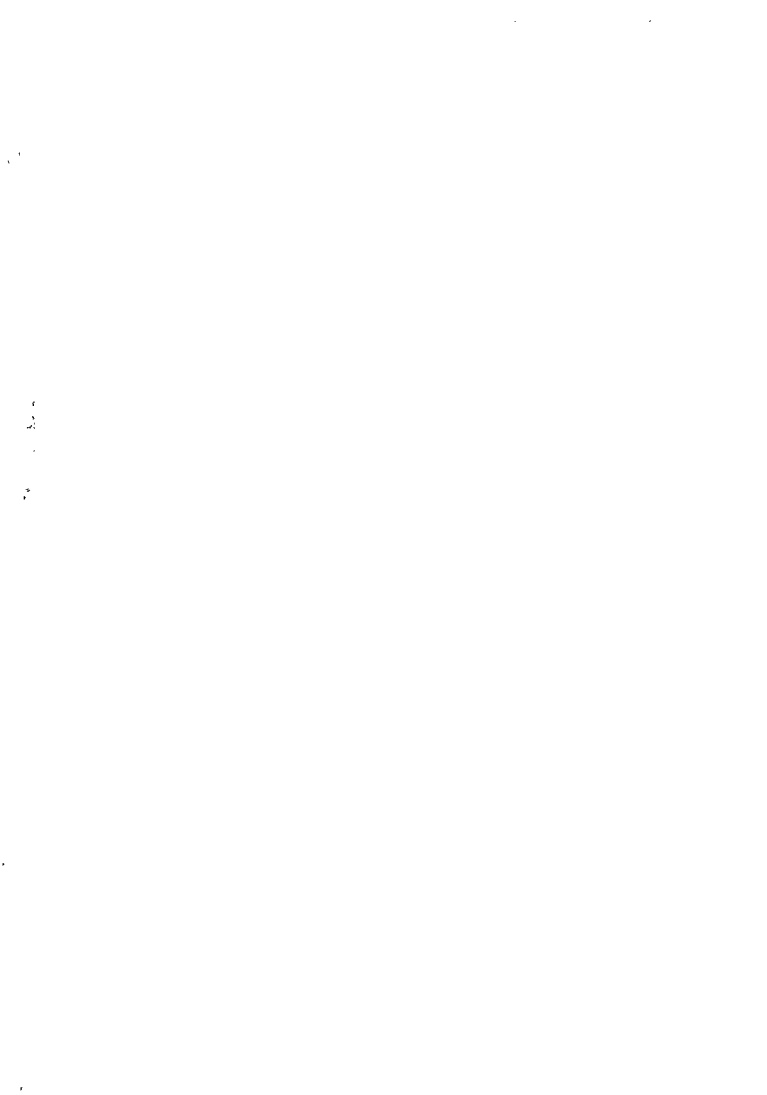
जग माहीं ऐसे रहौ ज्यों अम्बुज सर माहिं ।
रहै नीर के आसरे पै जल छूवत नाहिं ॥४॥

दया नम्रता दीनता छिमा सील सन्तोष ।
इनकूँ लै सुमिरन करै निहचै पावै मोख ॥५॥

चरनदास यों कहत है सुनियो सन्त सुजान ।
मुक्ति मूल आधीनता नरक मूल अभिमान ॥६॥

—चरनदास

* * *

निश्चय यह मन डूबता लोभ मोह की धार ।
चरनदास सतगुर मिले सहजो लई उबार ॥१॥

सहजो गुरु दीपक दियो नैना भये अनंत ।
आदि अंत मध एक ही सूझ परै भगवंत ॥२॥

जब चेते तब ही भला मोह नींद सूँ जाग ।
साधू की संगत मिले सहजो ऊँचे भाग ॥३॥

दीर्घ बुद्धि जिनकी महा सील सदा ही चैन ।
चेतनता हिरदै बसै सहजो सीतल बैन ॥४॥

ना सुख दारा सुत महल लहै न सुख धनि भूप ।
साधु सुखी सहजो कहै तृस्ना रोग स्वरूप ।

प्रेम पुंज प्रगटै जहाँ तहाँ प्रगट हरि होय।
दया दया करि देत हैं श्रीहरि दर्शन सोय ॥३॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं नहिं वैकुंठ वेवान।
चरन कमल चित चहत हौं मोहि तुम्हारी आन ॥४॥
साधु संग में सुख वड़ो जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को कलमख डारै खोय ॥५॥

—दयाबाई

* * *

श्रीस्यामा कों करत हैं रामसहाय प्रनाम।
जिन अहिपतिधर कौं कियौ सरस निरंतर धाम ॥१॥
अहन अयन संगीत तन वृंदावन हित जासु।
नगधर कमला सफत पर विपुंगवासन आसु ॥२॥
मृदु धुनि करि मुरली पगी लगी रहै हरिगात।
या मुरली की है अली पनी भली विधि बात ॥३॥
धन जोबन रूप चातुरी सुंदरता मृदु बोल।
मनमोहन-नेहैं बिना सब होहैं कै मोल ॥४॥
हारी जतन हजार कै नैना मानहिं नाहिं।
माधव ... री माधव सौं मँडराहिं ॥

पद्मनाभ के नाभि की सुखमा सुठि सरसाय।
निरखि भानुजा धार को भ्रमि भ्रमि भवँर भुलाय ॥५॥

—रघुराज

*　　*　　*

धनहिं राखिये विपति हित तिय राखिय धन त्यागि।
तजिये गिरिधरदास दोउ आतम के हित लागि ॥१॥

लोभ न कबहूँ कीजिये या में विपति अपार।
लोभी को विश्वास नहीं करे कोउ संसार ॥२॥

लोभ सरिस अवगुन नहीं तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम विद्या सम धन आन ॥३॥

सकल वस्तु संग्रह करै आवै कोउ दिन काम।
बखत परे पर ना मिलै माटी खरचे दाम ॥४॥

कारज करिय विचारिकै कर्म लिखी सो होय।
पाछे उपजै ताप नहिं निन्दा करै न कोय ॥५॥

पुन्य करिय सो नहिं कहिय पाप करिय परकास।
कहिये सों दोउ घटत हैं बरनत गिरिधरदास ॥६॥

पावक बैरी रोग रिन सेसहु रखिये नाहिं।
ए थोरे हूँ बढ़हिं पुनि महा जतन सो जाहिं ॥७॥

दगाबाज की प्रीति यों बोलत ही मुसकात।
जैसे मेंहदी पात में लाली लखी न जात ॥६॥

निकट रहे आदर घटे दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या संसार में प्रीति करौ जनि कोय ॥७॥

दरिया सोता सकल जग जानत नाहीं कोय।
जागे में फिर जागना जागा कहिये सोय ॥८॥

बुल्ला चल सुनार दे (जित्थे) गहना गढ़िये लाख।
सूरत आपो आपनी तू इको रूप वे आख ॥९॥

धन जननी धन भूमि धन धन नगरी धन देस।
धन करनी धन सुकुल धन जहाँ साधु परवेस ॥१०॥

भीखा केवल एक है किरतिम भयो अनन्त।
एकै आतम सकल घट यह गति जानहिं सन्त ॥११॥

जो जन जाकी सरन है सरन गहे की लाज।
मीन धार सन्मुख चले बहे जात गजराज ॥१२॥

पात झरंते इमि कहैं सुन तरवर बनराय।
अब के बिछुरे कब मिलें दूर परेंगे जाय ॥१३॥

साँरग ने सारँग गह्यो सारँग बोल्यो आय।
जो सारँग सारँग कहै सारँग मुख ते जाय ॥१४॥

पान पुराना घी नया औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठ तुरङ्ग की सरग निसानी चारि ॥१

दोहा-मानसरोवर

द्वितीय सोपान

(अर्वाचीन कवियों के उत्तमोत्तम दोहे)

ह रि श्चं द्र

। चाहै न कछु सदै सबै जो होय।
रस चाहिकै प्रेम बखानो सोय ॥१॥

ा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥२॥

रत बहु भाँति लौं जद्यपि बालकन ज्ञान।
ा-शिक्षा सरिस होत तौन नहिं ज्ञान ॥३॥

पढ़ो लिखो कोउ लाख विध भाषा बहुत प्रकार।
पै जबही कछु सोचिहौ निज भाषा अनुसार ॥४॥

करहु विलंब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल ॥५॥

क्यों अजीव भारत भयो आजु सजीव लखात।
क्यों मसान भुव आजु बनि रंगभूमि सरसात ॥८॥

जो भारत जग में रह्यो सब सों
ताही भारत में रह्यो अब नाहिं

रचती है कविता सुधा सुधासिक्त अवलेह।
लहता है रससिद्ध कवि अजर अमर यशदेह ॥१॥

चिरजीवी हैं सुकवि जन सब रस सिद्ध समान।
उक्ति सजीवन जड़ी को कर सजीवता दान ॥२॥

अमल धवल आनन्दमय सुधासिता सुमिलाप।
है कमनीय मयंक सम कविकुल कीर्ति-कलाप ॥३॥

गौरव केतन से लसित अनुपम रत्न उपेत।
अमर-निकेतन तुल्य है कविकुल कीर्ति-निकेत ॥४॥

मानस-अभिनंदन अमर नंदन वन वर कुंज।
है पावन प्रतिपत्तिमय कवि-पुंगव यश-पुंज ॥५॥

बरस-बरसकर रुचिर रस हरे सरसता प्यास।
असरस चित को अतिसरस करे सरस पदन्यास ॥६॥

मिले मधुर स्वर्गीय स्वर हो स्वर सफल रसाल।
व्यंजन में वर व्यंजना हो व्यंजित सब काल ॥७॥

विधि-सा सुत रवि-सा सुहृद पा हरि-सा आधार।
सारहीन होता रहा सरसिज पड़े तुषार ॥१८॥

काल बना तू कमल का क्यों कर सका न प्यार।
तू सार यह समझ ले है असार संसार ॥१९॥

भले बुरे की ही रही भले बुरे से आस।
काँटे हैं तन बेधते देते सुमन सुवास ॥२०॥

खोजे खोजी को मिला क्या हिन्दू क्या जैन।
पत्ता पत्ता क्या हमें पता बताता है न ॥२१॥

रँगे रंग में जब रहे सकें रंग क्यों भूल।
देख उसी की ही फबन भूल रहे हैं फूल ॥२२॥

क्या उसकी है सोहती नहीं नयन में सोत।
क्या जग में है जग रही नहीं जागती जोत ॥२३॥

पूजन जोग जिसे कहें पूजित जन धन दास।
उसे जो नहीं पूजते तो क्यों पूजे आस ॥२४॥

आव भगत उसका करें पूजे पाँव सचाव।
सब से ऊँचा जो रहा रखकर ऊँचे भाव ॥२५॥

बिना बीज क्यों बेलि हो बिना तिलों क्यों तेल।
किसी खेलाड़ी के बिना है न जगत का खेल ॥२६॥

क्या निर्गुण है ? है भला किसको निर्गुण मान।
गुण वाले जो कर सकें करें सगुण गुणगान ॥२७॥

स त्य ना रा य ण

यह मुरली अधरान की वह चितवन की कोर।
सघन कुंज की वह छटा अरु वह जमुन-हिलोर ॥१॥

पीतपटी लिपटायकैं लै लकुटी अभिराम।
बसहु मंद मुसिक्याय उर सगुन रूप घनस्याम ॥२॥

करम-धरम नित-नेम कौ सब विधि देख्यौ तार।
पै असार संसार में एक प्रेम ही सार ॥३॥

चित चिन्ता तजि डारिकैं भार जगत के नेम।
रे मन, स्यामा-स्याम की सरन गह्यौ करि प्रेम ॥४॥

श्रीराधापति माधव श्रीसीतापति धीर।
मत्स आदि अवतार नित नमौं, हरहु भवपीर ॥५॥

रेवति-प्रिय मूसलहली बली सिरी बलराम।
वन्दौं जगव्यापक सकल कृष्णाग्रज सुखधाम ॥६॥

भव - बाधागाधा - हरन राधा राधापीय।
सुखशान्ति हरि, बिस्तरहु मंगल मेरे हीय ॥७॥

वियोगी हरि

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥१॥

छाँड़ि धीर रसु अब हमैं नहिं भावतु रस आन ।
ध्यावतु सावन-आँधरो हरो-हरो हि जहान ॥२॥

खंड-खंड ह्वै जाय बरु देतु न पाछें पैंड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मैंड़ ॥३॥

सहजसूर रण-चूर-उर चाहिय चातक-चाह ।
चाहिय हारिल-हठ वहै चाहिय सती-उमाह ॥४॥

खल-खंडन, मंडन-सुजन सरल, सुहृद, सविवेक ।
गुण-गँभीर रण-सूरमा मिलतु लाख में एक ॥५॥

कहत महादानी उन्हें चाटुकार मतिकूर ।
पीठिहुँ कौ नाहिं देत जे कृपण दान रण-सूर ॥६॥

दया-धर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिबि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥७॥

जीवन-परिचय

श्रीवियोगी हरिजी का पूर्व-नाम पंडित हरिप्रसाद द्विवेदी था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पंडित बलदेवप्रसादजी द्विवेदी था। इनका जन्म छत्रपुर राज्य में चैत्र शुक्ला रामनवमी, संवत् १९५३ वि० में हुआ। ये ६ महीने के भी न हो पाये थे कि इनके पिताजी का देहान्त हो गया।

विद्यारम्भ के पूर्व ही, ७ वर्ष की आयु में, इन्होंने मनोरम एक कुण्डलिया बनाई थी। ८ वर्ष की अवस्था में घर पर ही इनकी हिन्दी की शिक्षा प्रारम्भ हुई।

वियोगी हरिजी खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। [illegible]र परिमार्जित और भावपूर्ण होती है। आपको 'वीरसतसई' [illegible] पर १२००) मंगलाप्रसाद पुरस्कार मिला है।

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥१॥

छाँड़ि वीर रसु अब हमैं नहिं भावतु रस आन ।
ध्यावतु सावन-आँधरो हरो-हरो हि जहान ॥२॥

खंड-खंड ह्वै जाय बरु देतु न पाछें पैंड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मैंड़ ॥३॥

सहजसूर रण-चूर-उर चाहिय चातक-चाह ।
चाहिय हारिल-हठ बहै चाहिय सती-उमाह ॥४॥

खल-खंडन, मंडन-सुजन सरल, सुहृद, सविवेक ।
गुण-गँभीर रण-सूरमा मिलतु लाख मैं एक ॥५॥

कहत महादानी उन्हैं चाटुकार मतिकूर ।
पीठिहुँ कौ नहिं देत जे कृपण दान रण-सूर ॥६॥

दया-धर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिबि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥७॥

कूकरु उदरु खलायकैं घर-घर चाटतु चून।
रँगे रहत सद खून सों नित नाहर-नाखून ॥१८॥

केसरिया बागो पहिरि कर कंकण, उर माल।
रण-दूलह ! वरि लाइयौ दुलहिन विजय-सुबाल ॥१९॥

औघट घाट कृपाण कौ समर-धार बिनु पार।
सनमुख जे उतरे, तरे परे विमुख मँझधार ॥२०॥

रण-सुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुण्ड।
उठि कबंध जुट्टत कहूँ कहुँ लुट्टत रिपु-रुण्ड ॥२१॥

अरे, फिरत कत, बावरे ! भटकत तीरथ भूरि।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि ॥२२॥

बसत सदा ता भूमि पै तीरथ लाख-करोर।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे बिरुझि बीर बरजोर ॥२३॥

दियो दानु जिन सीस कौ चाहुत न ते घृत-बीर।
मुहुँ लगाय फेरे, कहौ पियत सिंहिनी-छीर ? ॥२४॥

मौलि-जटा धनु-बान कर मुख प्रसेद, अँग श्रान्त।
बसौ विजयराघव हिये किये रूप रण-क्रान्त ॥२५॥

रहौ पूरि श्रवननि सदा त्रिजग - प्रकंपनहार।
धंक - लंक - भर - शंक - कर जुगल - धनुष - टंकार ॥२६॥

हिन्दू-कवि, हिन्दुथान-कवि हिन्दी-कवि रसकन्द।
सुकवि, महाकवि, सिरकवि धन्य धन्य, कवि चन्द ॥२७॥

कनक-कोट-कंगूर जो किये घौरहर - धूम ।
गो. भारत-आरति हरौ मारुति-लामी-लूम ॥५८॥

धन्य उत्तरा-उर-धनी ! धन्य सुभद्रा-नंद !
धनि भारत-भट-अग्रनी ! पार्थ - पयोनिधि - चंद ! ॥५९॥

धर्मवीर अगनित रह्यौ युद्धवीर बल-सीम ।
पै द्रौपदि अपमान-हरु भीमकर्म इक भीम ॥६०॥

दियौ उलटि साम्राज्य तैं करि अशक्यहू शक्य ।
नीति-वीरता मैं तुहीं कुशल एक चाणक्य ॥६१॥

जासु समर-हुंकार तैं काँपतु विश्व विराट ।
सल्यूकस-गज-सिंह सो जयतु गुप्त सम्राट ॥६२॥

अरि-आँतन की बाँधिकैं सुभग सीस पै पाग ।
चढ़ो अलापतु अश्व पै कन्ह मत्त रण-राग ॥६३॥

किते न उद्धत भूप किय पृथीराज ! तुव दास ।
धनि ऐसो कैमास अरु तुव जीवनु कैमास ॥६४॥

लियौ बाँधि चामुंडरै हन्यो सुमति कैमास ।
संभरीस ! साम्राज्य की करत तऊ तैं आस ॥६५॥

है तेरी ही मूँल औ तेरी ही तरवार ।
तुही पैज - रखवार है संयमराय - कुमार ॥६६॥

दुहुँ मत्त जयचंद ! वै दुहुँ धीर रण-धीर ।
यहाँ कादरपंढौर तौ यहाँ - चंद्रपुंडीर ॥६७॥

तेगबहादुर जो किया किया कौन मुरशीद ।
सर दीना, सार न दिया साँचा अमर शहीद ॥७८॥

जय अकाल-आनन्द-भव नव मकरन्द-मलिन्द ।
शक्ति-साधना-सिद्धवर असि-धर गुरुगोविन्द ॥७९॥

होत सूर सत्नाम करि चूर-चूर निज अंग ।
पिसत-पिसत ज्यों सिला पै लावति मेंहदी रंग ॥८०॥

दलौं त्रिशूल त्रिशूल-धर त्रिभुवन-प्रलयंकारि ।
हर त्र्यम्बक त्रैलोक्य-पर त्रिदश-ईश त्रिपुरारि ॥८१॥

तूँ अठौर राठौर-कुल भयौ ठसक की ठौर ।
दुर्जय दुर्गादास धनि धीर-वीर-सिरमौर ॥८२॥

ब्रह्मनिष्ठता व्यास की जामदग्न्य को ओज ।
दीपत इन दोउन तैं तिलक-सुनैन-सरोज ॥८३॥

किते अँधेरे जगतु कौं दियौ न ओज-प्रकास ।
कासु न चित-रंजन कियो तुम चितरंजन दास ! ॥८४॥

धारि पीउ-भुज-माल तब बिलस्यौ प्रेम रसाल ।
अब हौं वीरा धारिहौं समर शत्रु-सिर-माल ॥८५॥

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु-सिसु लियो बचाय ।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय ॥८६॥

धन्य सती दुर्गावती करि गढ़मंडल राज ।
रखी गोंड़वानैं सुदी रजपूत-धरम की लाज ॥८७॥

दुलारेलाल

दुलारेलाल

सुमिरौ वा विघनेस कौ तेज-सदन मुख-सोम।
जासु रदन-दुति-किरन इक हरति विघन तम-तोम ॥१॥

बंदि विनायक विघन-अरि न छिन विघन समुहाहिं।
कर-इंगित के करत ही छुईमुई है जाहिं ॥२॥

श्रीराधा - बाधाहरनि नेह अगाधा - साथ।
निहचल नैन-निकुंज मैं बसौ निरंतर नाथ ॥३॥

अनु-अनु आपु प्रकास करि करत अँधेरैं बास।
उर-निकुंज तम-पुंज मम रमिए रमानिवास ॥४॥

कंचन होत खरो-खरो लहे आँच कौ संग।
सुजनन पै त्यौं साँच तैं चढ़त चौगुनौ रंग ॥५॥

गोरस हिय-तमकूप मम दोष-तिमिर विनसाय।
रस-प्रकास भारति भरौ प्यालौ मन छकि जाय ॥६॥

मंद-मंद सुख-कंद कौ मंद हँसत मुख-चंद।
नसत द्वंद-दुखदंद-तम उगत जगत आनंद ॥७॥

लखि अनेक सुंदर सुमन मन न नेक पतियाइ।
अमल कमल ही पै मधुप फिरि-फिरि फिरि मँड़राइ॥१८॥

लखिकैं भारत-दीप कौं हतप्रभ-सौ असहाइ।
दै नवजीवन-नेह निज गंधी दियौ जगाइ॥१९॥

धीर धीर सहि तीर-भर फटक काटि कढ़ि जात।
बादल-दल बरसत विकट वायुयान चढ़ि जात॥२०॥

रही अछूतोद्धार-नद छुआछूत-तिय डूबि।
साखन कौ तिनकौ गहति भ्रांति-भँवर सौं ऊबि॥२१॥

नखत-मुकत आँगन-गगन प्रकृति देति बिखराय।
बाल हंस चुपचाप चट चमक-चोंच चुगि जाय॥२२॥

सबै सुखन कौ सोत सतत निरोग सरीर है।
जगत-जलधि कौ पोत परमारथ-पथ-रथ यहै॥२३॥

कला यहै जो ज्ञान पै आपुनि छाँड़ै छाप।
ज्यों गंधी के गेह मैं गंध मिलति है आप॥२४॥

जाति-पाँति की भीति तौ प्रीति-भवन मैं नाहिं।
एक एकता-छतहिं की छाँह मिलति सब काहिं॥२५॥

जग-नद मैं तेरी परी देह-नाव मँझधार।
मन-मलाह जो बस करै निहचै उतरै पार॥२६॥

सिय-गांधी दोउ भए धौंके माँ के लाल।
उन काटे ढिकुन-गुन इन जग-दृग-तम-जाल॥२७॥

(ना)ट मुरली माला मुकट धरि कटि कर उर भाल—
मंद-मंद हँसि बसि हिये नंद दुलारे लाल ॥३८॥

पुरखन कौ धन दै दियौ देस-प्रेम की राह।
त्याग-निसेनी चढ़ि चढ़े चित-चित भामासाह ॥३९॥

करी करन अकरन करनि करि रन कवच-प्रदान।
हरन न करि अरि-प्रान निज करनि दिए निज प्रान ॥४०॥

हिंदू जवन ईसा राम रहीम।
ईसाई बैबिल बेद कुरान मैं जगमग एक असीम ॥४१॥

लखि जग-पंथी अति थकित संझा-बाँह पसारि—
तम-सरायँ मैं दै रही छाँह छपा-भटियारि ॥४२॥

बिन बिबेक कौ मन भयौ बिन लंगर कौ पोत।
भ्रमत फिरत भव-सिंधु मैं छिन न कहूँ थिर होत ॥४३॥

हिंदी-द्रोही उचित ही तुव अँगरेजी नेह।
दई निरदई पै दई नाहक हिंदी देह ॥४४॥

होयँ सयान अयान हू जुरि गुनवान-समीप।
जगमग एक प्रदीप सौं जगत अनेक प्रदीप ॥४५॥

हृदय-सदन तैं असत-तम हरौ करौ जो सून।
सुत-भरत हित तो झपटि झट आयगौ सून ॥४६॥

दरसनीय छवि देस गढ़ जहँ जुति-ही-जुति होइ।
हौं चौरी हेरन गयौ दैब्यो निज जुति खोइ ॥४७॥

घात-भूलि रे फूल यों निज श्री-भूलि न फूलि।
काल कुटिल कौ कर निरखि मिलन चहत तैं धूलि ॥५८॥

डारैं हास-फुहार-कन करन-कियारिन माहिं।
सींचैं कवि-माली सुरस रसिक-सुमन विकसाहिं ॥५९॥

लैन-दैन सपनैं भयौ बहु विचार मन माहिं।
आँख खुली, तौ लखि परयौ हानि-लाहु कछु नाहिं ॥६०॥

नंदलाल-रँग-आलरँग चीत-चीर रँगि लेहु।
जगत-आलजंजाल कौ दीमक लगन न देहु ॥६१॥

तू हेरत इत-उत फिरत वह घट रह्यौ समाइ।
आपौ खोवै आपनौं मिलै आप ही आइ ॥६२॥

जुगन-जुगन बिछुरे रहे हम तैं हरिजन लोग।
गाँधी-जोगी-जोग किय छन मैं जुगल-सँजोग ॥६३॥

अपनेहिं अंग अछूत करि पर-अछूत भे लोय।
जो जैसी करनी करै तैसी भरनी होय ॥६४॥

निरबल ह्वै दल बाँधिकैं सबलहिं देत हराइ।
ज्यों सींगन कौं गाय-गन धन-पति देत भगाइ ॥६५॥

मिलत न भोजन, नगन तन मन मलीन, पग-घाउ।
निरधनता साकार लखि ढारति करुनहु आँसु ॥६६॥

पुरस्कार-रज तैं मन-मुकुर पावत हतौ उजास।
होन लगत धुँधिल तुरत छुधि, अनंत परकास ॥६७॥

बात-भूलि रे फूल यों निज श्री-भूलि न फूलि।
काल कुटिल कौ कर निरखि मिलन चहत तैं धूलि ॥५८॥

हाँ हास-फुहार-कन करन-कियारिन माहिं।
सींचें कवि-माली सुरस रसिक-सुमन विकसाहिं ॥५९॥

लैन-दैन सपनैं भयौ वहु विचार मन माहिं।
आँख खुली, तौ लखि परयौ हानि-लाहु कछु नाहिं ॥६०॥

नंदलाल-रँग-आलरँग चीत-चीर रँगि लेहु।
जगत-आलजंजाल कौ दीमक लगन न देहु ॥६१॥

तू हेरत इत-उत फिरत वह घट रह्यौ समाइ।
आपौ खोवै आपनौं मिलै आप ही आइ ॥६२॥

जुगन-जुगन बिछुरे रहे हम तैं हरिजन लोग।
गाँधी-जोगी-जोग किय छन मैं जुगल-सँजोग ॥६३॥

अपनेहिं अंग अछूत करि पर-अछूत भे लोय।
जो जैसी करनी करै तैसी भरनी होय ॥६४॥

निरबल ह्वै दल बाँधिकैं सबलहिं देत हराइ।
ज्यों सींगन सौं गाय-गन बन-पति देत भगाइ ॥६५॥

मिलत न भोजन, नगन तन मन मलीन, पथ-बासु।
निरधनता साकार लखि हारति करुनहु आँसु ॥६६॥

पुसकर-रज तैं मन-मुकुर पावत इतौ उजास।
होन लगत बिंबित तुरत सुचि, अनंत परकास

करुणा

मानुस-जन्म अमोल लै दीन्हों व्यर्थ बिताय।
कह कीन्हों जस जाय जग रे नर! कहत न काय? ॥१॥

कबहुँ तप्यो पर-ताप तें? हरी कबहुँ पर-पीर?
आसा-हीन-अधीर कहँ कबहुँ बँधायौ धीर? ॥२॥

आयो आपत-काल महँ कहुँ काहू के काम?
आप सह्यो सन्ताप कहुँ दै औरहिं आराम? ॥३॥

हरे कबहुँ दुख दीन के प्रिय प्रानन पै खेल?
विपति बिदारी काहु की आप आपदा झेल? ॥४॥

देखत पर-परिताप कहुँ कीन्हों अश्रु-निपात?
अत्याचार—अनीति बहु देखि जरे कहुँ गात? ॥५॥

कहुँ अनाथ—असहाय की कीन्हीं कछुक सहाय?
पार कियो कहुँ काहु को अपनो हाथ गहाय? ॥६

सुनि घमजीली दीन की करुणाजनक पुकार।
तिलमिलाय तड़पाय कहुँ कीन्हों कछु प्रतिकार? ॥

... उपख्यान—
दशा सुकवीन की सुधि आवै इक गावै मृदु तान' ॥१८॥
जरै इक दीन को कुपित भये कविराय।
छोटे मुख बात बड़ि सुकवि-विहीन लखाय' ॥१९॥
त्रया देश अधीन है सरल सुमार्ग लखाय।
त समुन्नति जो सदा नेता निपुन कहाय ॥२०॥
ाय-नीति-नरता-निरत करै न चञ्चल कोय।
रै प्रलोभन कोटि किन नेता कहिये सोय ॥२१॥
खरो कसौटी तें कढ़ै घीस घिसे सो जाति।
चढ़ै समुन्नति-सीस किन ठोस कर्म, तजि ख्याति ॥२२॥
जेहि नेता अपनावहीं आयु भयी बेकार।
दृष्टि गयी दौलत गयी है इक मृत्यु-अधार !! ॥२३॥
या शिक्षित बेकार को अजहुँ न पायो त्रान।
बेकारी की व्याधि तें जोवन जीवन प्रान ॥२४॥
...र्ग खिरानो जात हा! काज-अकाज असेस।
दीर्घाक्ष लेते जगत के सब मैं सुन्यो हमेस ॥२५॥
रोटी!' को राग ... बेहाल।
... हवाल ॥२६॥

करौ न तुम कहुँ विश्व कहँ सुख-सौन्दर्य प्रदान।
छिन महँ सुषमा सृष्टि की होय मसान समान ॥३८॥

कृषक बंधु त्राता कृषक सौम्य सखा भरतार।
जानि अन्न-दाता पिता प्रणवौं बारम्बार ॥३९॥

लज्जा नहिं संकोच नहिं पौरुष-हीन न गात।
तदपि न पावत काम कोउ उमिरि अकारथ जात।४०॥

कर्म-चतुष्टय में लखी गौरव-पूर्ण महान।
उत्तम खेती देखि यह चकित भयो जहान ॥४१॥

जिन दिन देखे वे विभव बीते सुदिन सुकाल।
अब हैं कृषक मसान के जीवित नर कंकाल ॥४२॥

याहू तें बढ़ि विश्व महँ हैहै कहुँ अन्याय।
जो उपजावत अन्न वह मरत अन्न बिनु हाय! ॥४३॥

द्विगु परिधान न आन तन पर्ण-निकेत-निवास।
योगिन-गति पायी कृषक करि करि नित्य उपास ॥४४॥

पर-अधीन, पर-दास है सहत किते अपमान।
तऊ कहत 'हम हैं अहो! क्षत्रियों की संतान' ॥४५॥

भूषन-भार सँभारिहैं किमि वे क्षुधित किसान।
आय गये अब कंठ में जिन दीनन के प्रान ॥४६॥

होहिं न दुख दारुण जगत कीजै नरक-निवास।
कीजै पै न कृपायतन पर-आश्रित, पर-दास ॥४७॥

करौ न तुम कहुँ विश्व कहँ सुख-सौन्दर्य प्रदान।
छिन महँ सुषमा सृष्टि की होय मसान समान ॥३८॥
कृषक बंधु भ्राता कृषक सौम्य सखा भरतार।
जानि अन्न-दाता पिता प्रणवौं बारम्बार ॥३९॥
लज्जा नहिं संकोच नहिं पौरुष-हीन न गात।
तदपि न पावत काम कोउ उमिरि अकारथ जात ॥४०॥
कर्म-चतुष्टय में लखी गौरव-पूर्ण महान।
उत्तम खेती देखि वह चकित भयो जहान ॥४१॥
जिन दिन देखे वे विभव बीते सुदिन सुकाल।
अब हैं कृषक मसान के जीवित नर कंकाल ॥४२॥
याहू तें बढ़ि विश्व महँ ह्वैहै कहुँ अन्याय।
जो उपजावत अन्न वह मरत अन्न बिनु हाय! ॥४३॥
दिग् परिधान न आन तन पर्ण-निकेत-निवास।
योगिन-गति पायी कृषक करि करि नित्य उपास ॥४४॥
पर-अधीन, पर-दास हैं सहत किते अपमान।
तऊ कहत 'हम हैं अहो! आर्यों की संतान' ॥४५॥
भूखन-मारे सँभारिहैं किमि ये कृषित किसान।
आय गये अब कंठ में जिन दीनन के प्रान ॥४६॥
होहिं न तुम्ह करुणा जगत हीजै नरक-निवास।
कीजै पै न कृपाघात पर-आश्रित, पर-दास

दिनेश

श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश' बम्बई के रहने वाले एक भक्त कवि हैं। आपके सारगर्भित लेख तथा भावुकतापूर्ण रचनाएँ कल्याण में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

आपकी रचनाएँ ये हैं—भक्तभारती, मतवाली मीरा, श्याम-सतसई इत्यादि।

आपकी रचित 'श्याम-सतसई' आपके भक्त हृदय का अच्छा परिचय देती है।

तुम हो चन्द, चकोर मैं मैं मछली तुम नीर।
बिना तुम्हारे किस तरह चेतन रहे शरीर ॥१६॥
मैं लूँ ? तुमको भी नहीं लेने दूँ विश्राम।
क्या जानोगे है पड़ा किसी ढीठ से काम ॥१७॥
मेरा मन है कालिया विषधर कुटिल महान।
नाथ ! इसे नाथो तभी मैं समझूँ बलवान ॥१८॥
जिस पर तुम हो रीझते क्या देते यदुवीर !
रोने-धोने, सिसकने 'आहों' की जागीर ॥१९॥
जिस पर तुम हो खीझते क्या करते यदुवीर !
प्यारादिक से मारते बाँध स्वर्ण-जंजीर ॥२०॥
पात-पात की सृष्टि के जो प्रियतम सम्राट् !
बड़ा पातकी सामने दृष्टि-पात की बाट ॥२१॥
मुझको तुमसे भी अधिक मिलता है आनन्द।
तेरी ठोकर में भरा मोहन ! परमानन्द ॥२२॥
खोजूँ तुझे शरीर में बता कौन-सी ठौर।
रोम-रोम में तू रमा परम चतुर चित-चोर ॥२३॥
तू है त्रिगुणातीत तो मैं सब विधि गुणहीन।
दोनों ही निर्गुण हुए फिर क्यों हुआ न लीन ॥२४॥
इस सागर में डूबकर रह जाना मँझधार।
उस सागर में डूबकर हो जाना है पार ॥२५॥
तन-दीपक मति-वर्तिका माया निरन्तर तेल।
आत्म-ज्योति है जग रही सकल इसी का खेल ॥२६॥
चित्रकार इस जगत का देखा परम विचित्र।
[illegible] के रूप बन बैठा [illegible] मित्र ॥२७॥
[illegible] चित्र रहे मन [illegible] तो [illegible]।
[illegible] ॥२८॥
तुम हरदम ही [illegible] है सब प्रकृति पर रही काम।
सब का तू ही [illegible] की [illegible] गुलाम ॥२९॥
[illegible] हो [illegible] करो [illegible] प्रेम ! होशियार।
बिजली-सा [illegible] बदल ही [illegible] मेरा प्यार ॥३०॥
अब न रही, तू [illegible]
[illegible] जानेगा

कैसे कीड़ा आक का सुखी आक की गोद।
ऐसे विषयी जीव सब दुख में सुखी-समोद ॥४६॥

हरि की, जल की एक गति बहते नीची ओर।
नीचा रह हरि लीजिए यही युक्ति शिरमौर ॥४७॥

रे मन! क्यों तू जगत के गुनता है गुण-दोष।
कोस रहा है जगत को बना दोष का कोष ॥४८॥

अग्नि-धर्म है दहन ज्यों जल का शीतल धर्म।
पर-हित जीवन-मरण त्यों नर का निर्मल धर्म ॥४९॥

ढाई दिन की भक्ति से भक्त बना भरपूर।
पता नहीं मुझको यही दिल्ली अब भी दूर ॥५०॥

जल जायें धन-धाम वे जो न लगें पर-हेत।
उस धन से उत्तम कहीं सुखद ऊपरी रेत ॥५१॥

दुखिया के आँसू अरे धोयेंगे तब पाप।
जब तू पोंछेगा उन्हें सजल नेत्र ही आप ॥५२॥

जिस नर के उर में नहीं पक्षपात का पाप।
यह हरि का प्रिय दूत है पूत प्रभूत प्रताप ॥५३॥

अन्य रोग सब तुच्छ हैं गर्व भयंकर रोग।
संग रुलाता ही चले यही हँसाता लोग ॥५४॥

जिसने आगत अतिथि का किया न स्वागत-मान।
उसने बस भगवान का किया घोर अपमान ॥५५॥

निन्दक-दर्पण चाहिए प्रतिपल अपने संग।
बतला देता स्पष्ट यह मुँह पर दुर्गुण-रंग ॥५६॥

अजी वैद्य! तुमने पढ़ा माधव-रचित निदान।
यहाँ रोग के वास्ते इसका कहो विधान ॥५७॥

अक्षर-दर्शन लिए था [illegible]-विज्ञान।
अब भी अक्षर देखते हैं उपरदन-निधान ॥५८॥

समाचार-रत [illegible] मननशील गुरु-रत्न।
[illegible] पर [illegible], कवि, आज ॥५९॥

[illegible] भारत में किया [illegible] काम।
[illegible] भारत किया तमाम

[illegible]

सहज सत्वगुण, शान्तिमय श्रद्धा की सन्मूर्ति ।
मालवीय के रूप में मानवता की पूर्ति ॥७६॥

सेवा व्रतवर का व्रती सत्यशील द्युतिवान ।
धन्य ! आत्म-धन का धनी गांधी यति मतिमान ॥७७॥

खींचा गीता-भाल पर तिलक अनूप सुरूप ।
धन्य ! भारती-तिलक ! तू तिलक ! स्वराज्य-स्तूप ॥७८॥

कविता ऐसी चाहिए ज्यों काँसे का थाल ।
तनिक ठेस से गति सरस ध्वनि गूँजे चिरकाल ॥७९॥

'उत्तम' लेखक ग्रंथ में करता आत्म-प्रसार ।
'मध्यम' लिखता ग्रंथ धर 'अधम' निरा अनुकार ॥८०॥

समझा ही जाने लगा हलका हल का काम ।
करता सारी मुश्किलें हल वह, हलका काम ॥८१॥

हल चलता यदि बन्द हो हलचल मच संसार ।
हल पर ही यह महल है हिल जाये व्यापार ॥८२॥

पर-भाषा अनुकथन का देखा शुक ! परिणाम ।
छूटी यह स्वाधीनता पाया पञ्जर-धाम ॥८३॥

लाये तुलसी-सूर-से तूने भक्त ललाम ।
हिन्दी के दो नेत्रवर माता ! तुझे प्रणाम ॥८४॥

भव-भूषण भूषण-चरण पुरुषोत्तम श्रीराम ।
खेला तेरी गोद में माता ! तुझे प्रणाम ॥८[illegible]॥

सत्य-संध हरिचन्द्र नृप दानवीर निष्काम ।
यह भी तेरा ही तनय माता ! तुझे प्रणाम ॥८[illegible]॥

उपजा तेरी कुक्षि से कृष्ण [illegible] गुण-धाम ।
अमर गीत-गायक [illegible] माता ! तुझे प्रणाम ॥८[illegible]॥

भीम, युधिष्ठिर, पार्थ की तू जननी अभिराम ।
सब नर-रत्न पावन परम [illegible] माता ! तुझे प्रणाम ॥८[illegible]॥

गौतम, व्यास, कणाद से लिये कहाँ शुभ धी-धाम ।
[illegible] विद्यागंभीर माता ! तुझे प्रणाम

[illegible] महाराणा से युव-वीर [illegible]
[illegible] पावन पद की धूल में माता [illegible]

बातन में सब सिद्धि है बातन में सब योग।
ये मतवाले ह्वै गये मतवाले सब लोग ॥१०॥
अब कविता को समय नहिं निरखहु आँख उघारि।
मिलि मिलि कर सीखो कला आपन भला बिचारि ॥११॥

—सुधाकर द्विवेदी

देखत जो रंगी महल घन गजराज तुरंग।
सो कोऊ जैहैं नहीं श्रीशिवसम्पति संग ॥१॥
धर्म करो मन क्यों परो कहो कुमति के धंध।
का करिहौ चलिहौ जबै मूढ़ ! चारि के कंध ॥२॥
रे मन ! निति रहिहैं नहीं तरुनापन अभिलाख।
चार दिना की चाँदनी फिर अँधियारा पाख ॥३॥
लख्यो न जग सुख प्रद को धरयो न हिय में ध्यान।
घर को भयो न घाट को जिमि धोबी को स्वान ॥४॥
सुबह साँझ के फेर में गुजरी उमर तमाम।
दुविधा महँ खोये दुऊ माया मिली न राम ॥५॥
पीरी पहुँची आय के करी फकीरी नाहिं।
श्रीशिवसम्पति स्वयं ही जीवत गा जग माहिं ॥६॥

—शिवसम्पति

जब आये गुनहरी स्वरन द्वार के हरि नाम।
श्रोत्र सुनी रघुवंशमणि 'निर्बल के बल राम' ॥१॥
जपधन तपबल बाहुबल बाँधो बल है दाम।
हमरे दल पूती नहीं पाहि पाहि श्रीराम ॥२॥
रोक गई [illegible] नहीं [illegible] तलवार।
यही रही कसमसा [illegible] के हथियार ॥३॥
जिनके कर तौं [illegible] कठिन कृपान।
तिनके गुन प्रभु ! वेद हीं [illegible] धुर्वाँन ॥४॥
जहाँ मैं गुन [illegible] सौं ध्यान।
जिनके [illegible] सौं [illegible] ॥५॥
बार बार मारी नाग बारहि [illegible] कहाय।
कान फिरत नित रोम-रै जोरे ताल [illegible] ॥

फूल सुगन्ध न फल मधुर छाँह न आवत काम ।
सेमर तरु को जगत में बढ़िबो निपट निकाम ॥६॥
रे कोकिल ! तू काटि कित नीरस काल कराल ।
जौ लौं अलिकुल कलित नहिं फूलै कलित रसाल ॥७॥

—कन्हैयालाल पोद्दार

मानी दीन न हो सकै भलेहु प्रान दै खोय ।
बिना बुझे सपनेहु नहीं पावक शीतल होय ॥१॥
अपने तें जो वृद्ध अति तिहि पै करिय न क्रोध ।
किहूँ भाँति सोहत नहीं केहरि ससक विरोध ॥२॥
धीरज उत्तम बुद्धि बल साहस शक्ति सुनीत ।
ये दस सुखदायक सदा सुतिय सुपूत सुमीत ॥३॥
चिन्ता जननी चाह है ताको पति अविवेक ।
जौ विवेक की चाह तौ राम नाम जपु एक ॥४॥
जलचर थलचर गगनचर नभचर निसिचर हारि ।
जो न सरन इक नरहु की सुनयौ अरज मुरारि ॥५॥
चकई हग ज्यों रवि चहै ज्यों कुलतिय हग लाज ।
त्यों ही तुम मेरे हिये नित निवसहु रघुराज ॥६॥

—रामचरित उपाध्याय

सब सों मीठ गरीब हैं आप गरीबनिवाज ।
मोर कृपा कर [illegible] दे दिन दे सुखसाज ॥१॥
[illegible] करुनाकरन करि [illegible] ऐन ।
[illegible] करुना [illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible]

शब्दार्थ

प्रथम सोपान

कबीर—

१ गोविन्द—परमात्मा
पाँय—चरण
२ तन—शरीर
बेलरी—लता
३ मिरग—हिरन
बधिक—शिकारी
४ दीसई—दीखता
५ सिलि—पत्थर
६ सुमिरन—स्मरण
काहे—क्यों
८ केसन—बाल
जामे—जिसमें
९ रसरी—रस्सी
रैन—रात
१० गर्व—अभिमान
कर—हाथ
११ लाकड़ी—लकड़ी
१२ मोर—[illegible]
चबैना—भुने हुए चने आदि
१३ केरा—का
[illegible]
[illegible]
[illegible]

१७ परलै—सर्वनाश
१८ नौबत—नगारा
पुर—शहर
पट्टन—नगर
बहुरि—फिर
२० काँचा—कच्चा
कुम्भ—घड़ा
२१ रंक—गरीब
२२ बावरे—पागल
पिंड—शरीर
२४ नारी—स्त्री
नारी—नाड़ी
२५ कालि—कल
२६ सरिता—नदी
२७ सकाम—इच्छायुक्त
निष्कामी—इच्छारहित
निज—अपना
२८ चीत—चित्त, मन
२९ ना बीसरै—नहीं भूलना
३० साहिब—परमात्मा
३१ पावक—अग्नि
३२ बिरह—बिना दर्द के (मन से)
३३ कंचन—सोना

३४ बैद—हकीम
बेदन—पीड़ा
३५ निर्मई—बनाई
३६ आब—प्रभाव, रोब
३८ चीन्है—पहचाने
भीना—गीला, मग्न
४३ सुरति—स्मृति
४४ रहँट—एक यन्त्र जिसके द्वारा कुएँ से पानी निकाला जाता है
४८ सिख—शिष्य
४९ तरवर—वृक्ष
बिलंबिये—ठहरिये
५१ खेह—धूल
५३ ब्याधि—पीड़ा
उपाधि—मुसीबत
५४ गाँधी—अत्तार
५६ साकट—दुष्ट
५९ [illegible]—झगड़ा
६५ [illegible]
६६ [illegible]
हरिजन—भक्त
६९ [illegible]
७० [illegible]
७४ निसरे—[illegible]

मन को प्रसन्न
करने वाला
५ नंदन-वन—इन्द्र का
बगीचा
७ स्वर—ध्वनि
स्वर—स्वर वर्ण
व्यंजन—व्यंजन वर्ण
८ ओक—स्थान
समालोकित—प्रकाशित
आलोक—प्रकाश
९ कलित—सुंदर
वलित—युक्त
दयिता—स्त्री
१० याचना—माँग
१२ संत—साधु
असंत—असाधु
१३ पौर—द्वार
१४ पास—सहवास,
तरफदारी
१५ चाकर—सेवक
परलोक—देश
कुसुम—फूल पुष्प
मयंक—चन्द्रमा
१६ आक प्रसून—मदार
का फूल
भोलानाथ—शिवजी
१७ [illegible]—लिये हुए

१८ विधि—ब्रह्मा
हरि—विष्णु
तुषार—पाला
२० सुवास—सुगंध
२२ कमन—शोभा
२३ सोत—सोता
२४ पूजे—पूरा हो
२५ आवभगत—आदर
पूजे—पूजा करे
२८ निकेत—घर
२९ जोत—प्रकाश

सत्यनारायण—

१ चितवन—दृष्टि
कोर—किनारा
२ अभिराम—सुंदर
३ तार—ढंग
४ स्यामा-स्याम—
राधा-कृष्ण
५ मग्न—[illegible]
भवपीर—संसार के कष्ट
कृष्णाग्रज—कृष्ण के
बड़े भाई
७ राधाधीश—कृष्ण
८ वृषभानुजा—वृषभानु
की कन्या राधा
रश्मि—[illegible]
९ [illegible]—[illegible]
[illegible]

१० अघाय—तृप्त होकर
११ हेत—प्रेम
१३ यमलार्जुन—अर्जुन
के दो पेड़
१६ मृगमद—कस्तूरी

वियोगी हरि—

१ करि—हाथी
केहरी—सिंह
मर्दन—नष्ट करने वाला
२ भावतु—अच्छा लगता
आन—दूसरा
जहान—संसार
३ पंक—कर्दम
मेंड़—मर्यादा
४ चातक—एक पक्षी
हारिल—एक पक्षी
उमाह—उत्साह
९ पट—वस्त्र
११ क्षात्र धर्म—क्षत्रियों
का धर्म
११ [illegible]—[illegible]
की चाँदनी
१२ [illegible]—विकसित
हुआ
१३ मौन—चुप
१४ [illegible]—[illegible]
की दाने
[illegible]—[illegible]